भूमिका

कुमारप्पा ग्राम स्वराज्य संस्थान का प्रारंभ ४ जनवरी, १९६७ के दिन
ो कुमारप्पा की जन्म-तिथि होने के कारण कर दिया गया था । यद्यपि
ार्यकर्ता और साधनों, दोनों के अभाव में कोई भी महत्वपूर्ण कार्यक्रम लेना
ंभव नहीं था, पर आम चुनाव बहुत नजदीक थे, वातावरण पर इनका बहुत
भाव था तथा इनका असर आम जनता-विशेषतः ग्रामीण जनता के मानस
र बहुत पड़ रहा था । रात-दिन सभी जगह, मन्दिरों में, गांवों में, रास्तों में,
ाजार में, खेत में, दूकान में, दफ्तर में यही चर्चा चलती थी । इस परिस्थिति
यह विचार बना कि आम चुनाव के कुछ पहलुओं का प्रत्यक्ष अध्ययन किया
ाना उपयोगी रहेगा । इसी अवसर पर सर्व सेवा संघ की चुनाव संबंधी उप-
मिति के संयोजक श्री पूर्णचंद जैन ने संस्थान को लिखा कि इस प्रकार
अध्ययन की आवश्यकता है और उन्होंने एक संक्षिप्त प्रश्नावली भी
जी । फिर भी आम चुनाव की निकटता और संस्थान की तत्कालीन आर्थिक
थति को देखते हुए इस प्रकार के अध्ययन को हाथ में लेने में हिचक थी,
र अंत में नमूने का एक अध्ययन हाथ में लेने की बात तय हुई और
रिणामस्वरूप एक संयुक्त प्रश्नावली तैयार की गई तथा अध्ययन की रूपरेखा
ा ली गई ।

प्रश्नावली राजस्थान के ६० मित्रों को भेजी गई । झुंझनू क्षेत्र के
ध्ययन में श्री श्यामलीराम ने विशेष सहायता दी तथा परिश्रम किया । जयपुर
ा सीकर जिलों में श्री पूर्णचन्द पाटनी और श्री देवानन्द शर्मा द्वारा अध्ययन
किये गये । मैं नागौर जिले में गया । श्री सीताराम गोयल टोंक, अजमेर,
ी और कोटा जिलों में गये । ये दौरे बहुत ही संक्षिप्त हुए, पर इनसे
तावरण और जनमानस का अनुमान लग सका । सवाई माधोपुर के
लालचन्द शर्मा, भरतपुर में श्री जगदत्त प्रसाद गुप्ता, नागौर में श्री [illegible]
परा और जैसलमेर में श्री भगवानदास माहेश्वरी से मदद मिली । श्री
प्रसाद स्वामी ने नागौर के [illegible] क्षेत्र का विशेष अध्ययन प्रस्तुत
ा । उदयपुर-भीलवाड़ा क्षेत्र से कुछ मित्रों का भी सहयोग रहा । पर ऐसा
[illegible] लगता है अनेक कारणों से अध्ययन की गहराई में उतर सके नहीं ।

स्वाभाविक है कि इस प्रकार के सामाजिक अध्ययनों में क्रिया-प्रतिक्रिया और दृष्टिकोण की विविधता ही सामने आ सकती है, उसमें रुखों और झुकावों का ही समावेश हो सकता है, कोई एक ही निश्चित और परिपूर्ण राय नहीं बनाई जा सकती। इस सारे अध्ययन में प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न वर्गीय लोगों से चर्चा करने पर जो रायें और क्रिया-प्रतिक्रिया सामने आई, उन्हीं का उल्लेख किया गया है। अनुसंधानकर्ताओं की व्यक्तिगत रायें यथासंभव इसमें शामिल नहीं की गई है।

इस अध्ययन का प्रथम सीमित संस्करण गत मई माह में प्रकाशित किया गया था। वह समाप्त हो गया और इसकी मांग बराबर सभी ओर से आती रही, अतः अब इसकी आवृत्ति इस रूप में प्रकाशित की जा रही है।

गोकुल, दुर्गापुरा
१७ नवम्बर, १९६७.

जवाहिरलाल जैन

[१]

सामान्य जानकारी

भारत में चौथे आम चुनाव का कार्यक्रम फरवरी, १९६७ के लिये निश्चित किया गया। १२ जनवरी से चुनाव-आयोग की एक विशेष अधिसूचना द्वारा देश के सभी राज्यों तथा संघ क्षेत्रों में मतदान और मतगणना की घोषणा की गई।

इस सूचना के अनुसार लोकसभा तथा विधान सभाओं के चुनाव के लिये नामांकन पत्र निर्धारित चुनाव-क्षेत्रों के चुनाव-अधिकारियों के पास १३ से २० जनवरी तक दाखिल करा देने की व्यवस्था थी। ये पत्र अधिकारियों के पास उम्मीदवारों के द्वारा सार्वजनिक अवकाश के दिनों को छोड़ कर किसी भी दिन दाखिल कराने थे।

नामांकन पत्रों को वापिस लेने की अंतिम तिथि २७ जनवरी निश्चित की गई।

राजस्थान विधान सभा के १८४ स्थानों में से ७० के लिये मतदान १५ फरवरी को, ६७ के लिये १८ फरवरी को और बाकी ४७ के लिये २० फरवरी को तय किया गया था। यही तारीखें उन सभी क्षेत्रों में लोकसभा के राजस्थान के लिये निश्चित २३ स्थानों के लिये मतदान की थीं।

राज्य में १२९१३ मतदान-केन्द्रों की स्थापना का निर्णय किया गया था। इनमें ३६६ मतदान केन्द्र केवल महिलाओं के लिये थे। लगभग ३५ हजार चुनाव अधिकारियों की नियुक्ति करने का तय किया गया। चुनाव व्यवस्था पर सरकार का कुल व्यय पचास लाख रुपये का आंका गया।

यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक जिले को तीन भागों में बांटा जाय और प्रत्येक भाग में क्रमशः १५, १८ और २० फरवरी को मतदान रखा जाय। इसके परिणाम स्वरूप किसी भी जिले में २० फरवरी से पूर्व चुनाव समाप्त नहीं होगा। मतगणना २० तारीख के बाद ही की जायेगी। यह व्यवस्था इसलिये भी सोची गई कि मतदान-अधिकारी तथा कानून और व्यवस्था से संबंधित अधिकारी क्रमशः एक भाग से दूसरे भाग में जाकर सुविधा

पूर्वक अपना कर्तव्य-पालन कर सकें और इस प्रकार पूरे जिले को एक तिहाई शक्ति से ही संभाला जा सके।

राज्य में मतदाताओं की संख्या १ करोड़, २२ लाख, ५४ हजार आंकी गई।

[२]

चुनाव क्षेत्रों की परिसीमा

वर्तमान आम चुनावों में लोक सभा के लिये राजस्थान को २३ क्षेत्रों में बांटा गया जो इस प्रकार थे:—

१. गंगा नगर	७. अलवर	१३. कोटा	१९. पाली
२. बीकानेर	८. भरतपुर	१४. झालावाड़	२०. जालौर
३. झुंझनू	९. हिन्डौन	१५. बांसवाड़ा	२१. बाड़मेर
४. सीकर	१०. सवाईमाधोपुर	१६. उदयपुर	२२. जोधपुर
५. जयपुर	११. अजमेर	१७. चितौड़गढ़	२३. नागौर
६. दौसा	१२. टोंक	१८. भीलवाड़ा	

विधान सभा के इस राज्य को १८४ स्थानों में बांटा गया। औसतन एक लोकसभा-स्थान के पीछे ८ स्थान विधान सभा के लिये माने गये।

गंगानगर	१०	अलवर	१०	कोटा	८	भीलवाड़ा	८
बीकानेर	३	भरतपुर	१०	झालावाड़	५	पाली	७
चूरू	६	सवाईमाधोपुर	९	बांसवाड़ा	४	जालौर	५
झुंझनू	७	टोंक	५	डूंगरपुर	४	बाड़मेर	५
सीकर	७	अजमेर	९	उदयपुर	१३	जैसलमेर	२
जयपुर	१७	बूंदी	३	जोधपुर	८	नागौर	९

प्रत्येक आम चुनाव के पूर्व चुनाव-आयोग के द्वारा मतदाताओं की संख्या तथा स्थानों की संख्या के आधार पर चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन किया जाता है। मुख्यतः उपर्युक्त आधार को मूलभूत मानते हुए भी इस परिसीमन में प्रशासनिक इकाईयों का ध्यान रखा जाता है और चुनाव हेतु आने वाले मतदाताओं की सुविधा भी उसमें शामिल रहती है। साथ ही प्रशासनिक सुविधा और संभवतः सत्तारूढ दल के सदस्यों या क्षेत्र के प्रभावशाली तथा प्रमुख नागरिकों या लोक सभाई तथा विधान सभाई सदस्यों के प्रभाव

ग्रौर दृष्टिकोण का ग्रसर भी इस परिसीमन पर पड़ता है। ये प्रभाव किस सीमा तक उचित या ग्रनुचित हैं ग्रौर इन्हें किस सीमा तक मान्यता दी जाती है, दी जानी चाहिये या नहीं दी जानी चाहिये, यह सारा एक स्वतंत्र जांच ग्रौर ग्रध्ययन का विषय है। ग्रध्ययन की जो सीमा रही, उसमें यह किया जा सकना संभव नहीं था।

[३]

दलों द्वारा उम्मीदवारों का चयन

ग्राम चुनाव के सिलसिले में ग्रनेक उम्मीदवारों को ग्रंतिम चुनाव के पहिले भी ग्रनेक चुनावों के दौर में से गुजरना पड़ता है, यह कहना ग्रनुचित नहीं होगा। यह उम्मीदवार वे होते हैं जो किसी न किसी राजनैतिक दल के टिकट पर ही चुनाव लड़ते हैं। स्पष्ट है कि राजनैतिक दल का टिकट मिल जाने पर जहां काफी ग्रार्थिक सहायता का ग्राश्वासन प्राप्त हो जाता है वहां दूसरी ग्रोर उक्त दल विशेष के समर्थन से उनकी सफलता की ग्राशा भी काफी हद तक सफल हो जाती है। यही कारण है कि ग्रधिकांश उम्मीदवार चुनाव के लिए टिकट-वितरण के समय में येन केन प्रकारेण टिकट प्राप्त करने में ग्रपनी पूरी ताकत लगा देते हैं। दल के भीतर ग्रपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिये नये गठबंधन करते हैं। स्थानीय ग्रौर बड़े नेताग्रों की सिफारिशें करवाते हैं ग्रौर बुनियादी इकाइयों से समर्थन प्राप्त करने के लिये रात-दिन एक कर देते हैं ग्रौर संबंधित नेताग्रों पर यह प्रभाव डालने की हर चंद कोशिश करते हैं कि उन्हें ही टिकट देने पर ग्रमुक क्षेत्र में दल की जीत हो सकेगी।

यह स्थिति कमोबेश सभी राजनैतिक दलों में होती है, पर कांग्रेस में यह स्पर्धा ग्रधिक मात्रा में होती है, क्योंकि सत्तारूढ दल होने से इस दल का टिकट मिल जाने पर विजय की संभावनायें तो ग्रधिक रहती ही हैं, ग्रर्थ की व्यवस्था भी ग्रासानी से बैठ जाती है ग्रौर सरकारी तंत्र का लाभ मिलने की संभावना भी शायद ग्रधिक रहती है। इसके मुकाबले दूसरे राजनैतिक दलों का टिकट मिलने से केवल यही लाभ रहता है कि थोड़ा बहुत रुपया मिल जाता है ग्रौर दलीय समर्थन का बल भी प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि कांग्रेस के टिकट के लिये जहां ज्यादा संघर्ष की स्थिति होती है, वहां दूसरे राजनैतिक दलों के टिकट प्राप्त करने के लिए ज्यादा सरगर्मी ग्रभी दिखाई नहीं दी है।

इस वार राजस्थान में कांग्रेस के टिकट-वितरण संवंधी प्रकरण ने राज्य के सारे राजनैतिक वायु-मण्डल को ही विक्षुव्ध कर दिया, यह कहना गलत नहीं होगा। जैसा कि स्पष्ट है, दल के भीतर भी चुनाव के मौके पर हर नेता यही चाहता है कि उसके ही गुट के उम्मीदवारों को अधिक से अधिक टिकट दिये जावें ताकि नई विधान सभा में शक्ति संतुलन अपने पक्ष में रहने का वह पूरा लाभ उठा सके। यदि सरकार की वागडोर अपने हाथ में लेने लायक ताकत उसकी न भी वने तो कम से कम इतने विधान सभाई तो उसके पहुँच ही जाने चाहिये, जिसके वल पर उसका मंत्री पद तो सुरक्षित हो जावे क्योंकि आमतौर पर मंत्री वनाने से पहिले मुख्यमंत्री संवंधित व्यक्ति की पीठ पीछे रहने वाले विधान सभाइयों के संख्या वल पर नजर रखता है।

राजस्थान में अवकी वार शक्ति-परीक्षण का यह दौर काफी पहिले ही शुरू हो गया था। मुख्य मंत्री श्री सुखाड़िया ने चुनाव के कुछ समय पहिले ही कुछ उप मंत्रियों को तरक्की तथा नये उप मंत्रियों की नियुक्ति के मामले में श्री कुम्भाराम के दृष्टिकोण की उपेक्षा करके यह वताने की कोशिश की कि वे अपनी ताकत पर ही सरकार चलाने की क्षमता रखते हैं। उनके इस रुख ने कुम्भाराम गुट में यह प्रतिक्रिया पैदा करदी कि श्री सुखाड़िया जान वूझ कर शक्ति परीक्षण की चुनौती दे रहे हैं और यहीं से चुनाव के संवंध में पारस्परिक अविश्वास की प्रक्रिया का सूत्रपात हो गया। टिकटों के वितरण में मन मुटाव वढ़ा, मंत्रियों तथा उप मंत्रियों ने त्याग पत्र दे दिये। मामला कांग्रेस हाई कमाण्ड तक पहुँचा, पर कोई परिणाम नहीं निकला और प्रदेश स्तर पर फिर एक वार मुख्य मंत्री श्री सुखाड़िया को यह अधिकार दे दिया गया कि वे सर्व सम्मत सूची कांग्रेस उच्च सत्ता के पास भेजदें। उन्होंने जो सूची भेजी उससे कुम्भाराम गुट को संतोष नहीं हुआ और उसकी यह धारणा दृढ़ हो गई कि श्री सुखाड़िया अपने खेमे को ही ताकतवर वनाने के लिये कृतसंकल्प हैं। अंत में कुम्भाराम गुट के सभी लोगों ने उन सभी लोगों को जिन्हें कांग्रेस ने टिकट नहीं दिये थे, अपने साथ लेकर श्री रामकरण जोशी की अध्यक्षता में जनता पार्टी के नाम से नये राजनैतिक दल को जन्म दिया और खुल्लम-खुल्ला कांग्रेस का विरोध करने के लिये चुनाव-दंगल में प्रवेश किया। इस दल के जिन लोगों को कांग्रेस टिकट दिये जा चुके थे उन सभी ने टिकट लौटा दिये। कांग्रेस दल को मजवूरन वे टिकट उन लोगों को देने पड़े, जिन्हें पहिले टिकट देने से इन्कार कर दिया गया था।

पर इस प्रकार जनता पार्टी के गठन में काफी विलंब हो गया और चुनाव के दिन काफी नजदीक आ गये। ऐसी स्थिति में चुनाव-आयोग की ओर से इसे कोई चिन्ह नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि इसका चुनाव मैदान में स्वतंत्र अस्तित्व नहीं बन पाया। पर इसके उम्मीदवारों को चुनाव-मैदान में लाकर कांग्रेस की स्थिति को कमजोर बनाने का लोभ दूसरे विरोधी दल भी संवरण नहीं कर सकते थे। अतः पारस्परिक विचार विमर्श के बाद यही निर्णय किया गया कि जनता पार्टी के उम्मीदवार जहां से भी चुनाव लड़ना चाहें, किसी भी राजनैतिक दल के टिकट से चुनाव लड़ सकते हैं। चूंकि कांग्रेस को हराने की दृष्टि से राज्य के प्रमुख विरोधी दोनों दल—स्वतंत्र तथा जनसंघ—पहिले ही चुनाव गठबंधन कर चुके थे अतः अपने कोटे में से ही उन्होंने जनता पार्टी के उम्मीदवारों के लिये गुन्जाइश निकाली। कहा जाता है कि जनता पार्टी ने कुल मिला कर ८० उम्मीदवारों को चुनाव-दंगल में उतारा।

इस प्रकार राजस्थान में चुनाव से पूर्व साफ तौर से दो पक्ष बन गये थे। एक कांग्रेस का दूसरा कांग्रेस-विरोधियों का। यद्यपि कांग्रेस के विरुद्ध सभी राजनैतिक दल उस समय एक ही संयुक्त दल के रूप में नहीं आ पाये, पर स्वतंत्र, जनसंघ और जनता पार्टी के चुनाव गठबंधन का प्रभाव चुनाव-परिणामों पर काफी हद तक पड़ा है यह बात साफ तौर से सामने आई है।

[४]

महत्त्वपूर्ण दल तथा महत्त्वपूर्ण उम्मीदवार

राजस्थान में आम चुनावों के लिए विधान सभा की सदस्यता के लिये कुल १५२३ नामांकन पत्र भरे गये, जिनमे २१ अमान्य हो गये। १५०२ स्वीकार किये गये गये। निश्चित अंतिम तारीख तक ६११ पत्र वापिस ले लिये गये। परिणाम-स्वरूप ८९१ उम्मीदवार चुनाव-मैदान में रहे। इन उम्मीदवारों की दलीय स्थिति इस प्रकार थी—

कांग्रेस	१८२
स्वतंत्र	१०७
जनसंघ	६२
संयुक्त समाजवादी	३७

कम्युनिस्ट (द०)	२३
कम्युनिस्ट (वा०)	१८
प्रजा समाजवादी	१६
रिपब्लिकन	८
निर्दलीय	४३८
योग	८६१

निर्दलीय उम्मीदवारों में जनता पार्टी, हिन्दू महासभा तथा अन्य दलों द्वारा समर्थित उम्मीदवार भी शामिल थे।

विधान सभा के १२ स्थानों पर कांग्रेस का विरोधी दलों से सीधा मुकाबला हुआ। इनमें तीन मंत्री-परिषद के सदस्य तथा एक विधान सभा के अध्यक्ष थे। खाद्य मंत्री श्री नाथूराम मिर्धा का मुकाबला स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार से, विद्युत मंत्री श्री चन्दनमल वैद्य का मुकाबला एक भूतपूर्व न्यायाधीश निर्दलीय उम्मीदवार से, उपमंत्री श्री मनफूल सिंह का मुकाबला एक निर्दलीय से तथा विधान सभा के अध्यक्ष श्री रामनिवास मिर्धा का मुकाबला स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार से हुआ। इनके अलावा जिन क्षेत्रों में सीधा संघर्ष हुआ वे थे, शेरगढ़, शिव, श्रीमाधोपुर, सराड़ा, सिकराय, गुढ़ा मलानी, फलासिया और सलुम्बर।

इनके अलावा ४० स्थानों पर त्रिकोणात्मक संघर्ष हुआ। मुख्य मंत्री श्री सुखाड़िया का मुकाबला जनसंघ तथा साम्यवादी उम्मीदवार से, वित्त मंत्री श्री कौल का मुकाबला स्वतंत्र तथा निर्दलीय से, सहकारिता मंत्री श्री मदेरणा का मुकाबला स्वतंत्र तथा निर्दलीय से, उपमंत्री श्री रामदेवसिंह का मुकाबला प्रसोपा तथा वामपंथी साम्यवादी से, महारावल श्री लक्ष्मण सिंह का मुकाबला कांग्रेस के श्री भोगीलाल पंड्या तथा एक साम्यवादी से। वामपंथी साम्यवादी दल के महामंत्री श्री मोहनसिंह पूनमियां का मुकाबला एक कांग्रेस तथा एक स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार से हुआ। इनके अलावा योजना मंत्री श्री माथुर के विरुद्ध डीडवाना में ३, स्वायत्त शासन मंत्री श्री बरकतुल्ला खां के विरुद्ध जोधपुर में ७, स्वास्थ्य मंत्री श्री दामोदरलाल व्यास के विरुद्ध टोंक में ४, जनसम्पर्क मंत्री श्री हरिदेव जोशी के विरुद्ध ३, शिक्षा मंत्री श्री बृजसुन्दर शर्मा के विरुद्ध ३, सिंचाई मंत्री श्री राम प्रसाद लढ्ढा के विरुद्ध ४, कार्यवाहक

गृहमंत्री श्री निरंजन नाथ आचार्य के विरुद्ध ३, उपमंत्री श्रीमती प्रभा मिश्रा के विरुद्ध ३, उपमंत्री श्री दिनेशराय डांगी के विरुद्ध ३, उपमंत्री श्री घासीराम यादव के विरुद्ध ३, तथा विधान सभा के उपाध्यक्ष श्री राव नारायण सिंह मसूदा के विरुद्ध भी तीन उम्मीदवार मैदान में रहे थे।

प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल तथा प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री रामकिशोर व्यास के विरुद्ध भी तीन-तीन उम्मीदवार चुनाव-मैदान में रहे थे। जनसंघ दल के नेता श्री भैरुसिंह शेखावत तथा साम्यवादी (दक्षिण पंथी) दल के महामंत्री श्री एच० के० व्यास के विरुद्ध जो किशनपोल निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे थे, सात-सात उम्मीदवार थे। संयुक्त समाजवादी दल के अध्यक्ष मास्टर आदित्येन्द्र तथा प्रसोपा के अध्यक्ष श्री जोरावरमल बोडा के विरुद्ध भी सात-सात उम्मीदवार मैदान में थे।

कांग्रेस ने दो विधान सभाई क्षेत्रों—चोहटन तथा झालावाड़ में अपना कोई सदस्य खड़ा नहीं किया, चुनाव में चार उम्मीदवार दो-दो स्थानों से खड़े हुए राज्य के स्वास्थ्य मंत्री श्री दामोदरलाल व्यास टोंक तथा मालपुरा (विधान सभा) जनसंघ के श्री डा० वी० एन० शर्मा चित्तौड़गढ़ (लोकसभा) तथा बड़ी सादड़ी (विधान सभा) श्री त्रिलोकचन्द सीकर (विधान सभा तथा लोकसभा) से और महारानी गायत्री देवी जयपुर से (लोकसभा) तथा मालपुरा (विधान सभा) से खड़ी हुई।

विधान सभा के लिए सर्वाधिक उम्मीदवार सुजानगढ़ तथा बाडी से खड़े हुये। जहां इनकी संख्या १३-१३ थी। ४० क्षेत्रों में ३-३, ५५ में ४-४, २६ में ५-५, १३ में ६-६, १० में ७-७, १२ में ८-८, ३ में ९-९, १ में ११ तथा २ में १२-१२ प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा।

लोक सभा की राजस्थान की २२ सीटों के लिए ११६ उम्मीदवार मैदान में रहे जिनमें दलीय स्थिति इस प्रकार थी—

कांग्रेस	२२
स्वतंत्र	१४
जनसंघ	८
कम्युनिस्ट (वा०)	४
संयुक्त समाजवादी	५

रिपब्लिकन	१
निर्दलीय	६१
योग	११६

लोकसभा के स्थानों के लिए सीधा संघर्ष तीन जगह रहा, त्रिकोण संघर्ष ५ जगह रहा, चार–चार का तीन जगह, ५–५ का ५ जगह, ६–६ का एक जगह, ८–८ का तीन जगह, ९–९ का दो जगह और १०–१० का एक जगह। सीधा संघर्ष सवाई माधोपुर, कोटा और उदयपुर में रहा। सबसे अधिक उम्मीदवार–दस–झुंझनू में थे। केवल एक क्षेत्र बीकानेर ऐसा था जहां कोई दलीय उम्मीदवार नहीं था–पूरे नौ उम्मीदवार निर्दलीय ही थे। अधिकांश टक्कर स्वतंत्र और कांग्रेस में थी, कहीं कहीं जनसंघ भी टक्कर में था। एक–दो स्थानों पर संयुक्त समाजवादी या साम्यवादी भी सशक्त थे। कड़े संघर्ष उद्योगपतियों तथा राजघरानों में रहे। इनमें पुराने लोक सभाई सदस्य जो इस चुनाव में भी खड़े हुए १४ थे। इनमें बीकानेर के श्री करणी सिंह निर्दलीय थे, बाकी सब विभिन्न राजनैतिक दलों से संबंधित थे।

स्पष्ट है कि राजस्थान में आम चुनावों में भाग लेने वाले राजनैतिक दल कांग्रेस, स्वतंत्र, जनसंघ, संयुक्त समाजवादी, साम्यवादी (वा०) साम्यवादी (द०) प्रजासमाजवादी और रिपब्लिकन दल थे। इसके अतिरिक्त जनता पार्टी और हिन्दू-महासभा भी दो राजनैतिक दल थे एक को मैदान में देर से आने के कारण और दूसरे को संख्या-बल में अल्प होने के कारण चुनाव चिन्ह नहीं मिल सका। प्रमुख दलों में तो कांग्रेस, जनसंघ, स्वतंत्र, संयुक्त समाजवादी और जनता पार्टी को ही माना जायेगा। इनमें स्वतंत्र और जनसंघ में पहिले से चुनाव समझौता हो गया था और जनता पार्टी बाद में इनमें शामिल हो गई। इस तरह कुल मिला कर तीन पक्ष मुख्य रहे– १. कांग्रेस २. स्वतंत्र जनसंघ–जनता ३. संयुक्त समाजवादी।

राजस्थान में प्रमुख उम्मीदवारों में मंत्रिमंडल के भूतपूर्व तथा तत्कालीन सदस्य, विभिन्न राजनैतिक दलों के नेता तथा पदाधिकारी, बड़े उद्योगपति, राजघरानों तथा जागीरदारों से संबंधित लोग, विधान सभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, तथा लोकसभा के प्रमुख पदाधिकारी तथा सक्रिय सदस्य माने जा सकते हैं। इन्हीं पर लोगों की निगाहें टिकी थीं। इनमें भी जिनके चुनाव के

वारे में सारे देश तथा राजस्थान में विशेष दिलचस्पी रही उनमें निम्नलिखित का नाम लिया जा सकता है ।

लोकसभा के लिये—श्री राधेश्याम मुरारका, श्री हरिश्चन्द्र माथुर, श्री लक्ष्मीमल सिंघवी, श्री राजवहादुर ।

विधान सभा के लिये—श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री रामनिवास मिर्धा, श्री महारावल लक्ष्मणसिंह, श्री ग्रादित्येन्द्र, श्रीमती महारानी गायत्री देवी, श्री दामोदरलाल व्यास ।

राजस्थान में जिन राजनैतिक दलों ने चुनाव में भाग लिया, उनमें जनता पार्टी के ग्रतिरिक्त वाकी सव भारतीय स्तर के राजनैतिक दल थे । उनकी चुनाव घोषणा ग्रौर नीति का संचालन उनके केन्द्रीय संगठन ही करते थे । जनता पार्टी का निर्माण काफी देर से हुग्रा, ग्रतः उसे ग्रलग चुनाव चिन्ह नहीं मिल सका । राजस्थान में उसका ग्रपना चुनाव घोषणा पत्र ग्रौर चुनाव-नीति रही तथा चुनाव ग्रभियान चला, यद्यपि स्वतंत्र तथा जनसंघ के साथ चुनाव समझौता हो जाने के कारण उसका ग्रपना प्रभाव ग्रौर व्यक्तित्व वहुत ग्रलग तथा प्रभाव शाली नहीं वन सका । ग्रखिल भारतीय राजनैतिक दलों की चुनाव घोषणा, रीति-नीति ग्रादि का विवेचन यहां हमारे ग्रध्ययन की मर्यादा को देखते हुए ग्रावश्यक नहीं है ।

निर्दलीय उम्मीदवार— इस वार निर्दलीय उम्मीदवारों की संख्या में वृद्धि हुई । तीसरे ग्राम चुनाव में जहां केवल ३६० निर्दलीय उम्मीदवार चुनाव-मैदान में थे, इस वार संख्या वढ़ कर ४३८ तक पहुँच गई । किन्तु संख्या इतनी होते हुए भी पिछले चुनाव में केवल १५ उम्मीदवारों का जीतकर ग्राना, जिनमें १२ तो जनता पार्टी के हैं, इस वात का परिचायक है कि मतदाता निर्दलीय उम्मीदवार को ग्रपना प्रतिनिधि चुनकर भेजना नहीं चाहता । इस वार तो निर्दलीय उम्मीदवारों के कारण ही जहां विधान सभा का शक्ति संतुलन ही गड़वड़ा गया है ग्रौर राज्य में स्थाई सरकार वनाने की स्थिति ही कठिन हो गई है, उससे तो निर्दलीय उम्मीदवारों की जीतकर ग्राने की ग्राशा ग्रागे ग्राने वाले ग्राम चुनाव में ग्रौर भी धूमिल हो गई है, ऐसा कहना ग्रनुपयुक्त नहीं होगा ।

निर्दलीय उम्मीदवारों में ग्रधिकतर वे ही लोग रहते हैं, जिन्हें या तो कोई दूसरे पक्ष या दल परोक्ष रहकर खड़े करते हैं या जो स्वयं कुछ लाभ की ग्राशा से ग्रंतिम दम तक हारने का खतरा मोल लेकर भी मैदान में खड़े

रहते हैं। इन लोगों के सामने अपना कोई निश्चित कार्यक्रम भी प्राय: नहीं होता जिसे वे मतदाताओं के सामने प्रस्तुत कर सकें। इन उम्मीदवारों को खड़ा करने के पीछे आम तौर पर यही लक्ष्य रहता है कि वे किसी दूसरे उम्मीदवार के मत काट सकेंगे और उसे कमजोर बना सकेंगे। जो पक्ष इस दृष्टि से सोचते हैं वही आम तौर पर इन निर्दलीय उम्मीदवारों का चुनाव व्यय वहन करता है। झुंझनू संसदीय चुनाव क्षेत्र में अमुक जातियों के मत काटने के लिये ही अमुक अमुक जातियों के ऐसे उम्मीदवार खड़े किये गये थे जिनकी चुनाव लड़ने की गंभीरता स्पष्ट रूप से संदिग्ध थी।

[५]

चुनाव प्रचार

राजस्थान के विभिन्न भागों में प्राकृतिक परिस्थितियों तथा यातायात के क्षेत्रीय साधनों की दृष्टि से चुनाव प्रचार के तरीके अलग अलग रहे हैं जो स्वाभाविक बात थी। राज्य के रेगिस्तानी क्षेत्रों में जहां ऊंटों तथा ऊंट गाड़ियों का प्रयोग किया गया तथा विरल और आबादी वाले सभी तरह के क्षेत्रों में जीपों की भरमार रही। देहाती क्षेत्रों में बैलगाड़ियों का प्रयोग भी किया गया। जहां सड़कें नहीं थीं और काफी लोगों को एक साथ जाना होता था वहां ट्रैक्टरों के ट्रालियों को लगा कर उम्मीदवारों ने दूर दूर तक दौरे किये। देहाती क्षेत्रों में आजकल खेती के क्षेत्र में मशीनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है और इस प्रकार गावों में प्रतिवर्ष बढते जा रहे ट्रैक्टरों का प्रयोग इस बार चुनाव प्रचार में काफी किया गया।

चुनाव के दौरान ऐसी सवारियों का उपयोग ही सुविधाजनक होता है जो तेज चलने के साथ साथ कम खर्चे में अधिक दूरी तय कर सके और खराब सड़कों तथा कच्चे मार्गों पर भी वे खटके चली जा सके। यही कारण है कि चुनाव में जीप गाड़ियों का अधिक प्रयोग किया जाता रहा है। इस बार भी सभी दलों ने काफी संख्या में जीप गाड़ियां प्रयोग की हैं। सुना गया है कि शेखावाटी क्षेत्र के एक संसदीय क्षेत्र में चुनाव के दौरान लगभग ५०० जीपें निरन्तर कई दिनों तक काममें लाई जाती रही थीं। जीप गाड़ियां कितनी संख्यामें चुनाव में काम में लायी गई इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उन दिनों जीपों का किराया १००) प्रति दिन से भी ऊंचा पहुंच गया था। अनुमान

किया जाता है कि विधान सभा के प्रत्येक उम्मीदवार के पास १०–१५ जीपें रही हैं और इन पर होने वाले खर्चे का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। सरकारी जीपों के उम्मीदवारों के द्वारा काम लिए जाने की शिकायतें प्रायः नहीं मली।

चुनाव प्रचार में नियमित रूप से काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं के लिए, फिर वे चाहे वेतन भोगी रहे हों अथवा अवैतनिक, उम्मीदवारों की तरफ से सवारियों की स्थाई व्यवस्था तो प्रायः नहीं थी। वे अधिकांशतः साइ-किलों तथा किराये की गाड़ियों से दौरे करते थे। आम मतदाताओं से सम्पर्क करने के लिए जहां घर-घर जाकर लोगों से मिलने का तरीका अपनाया गया, वहां दलीय विचार धाराओं तथा निर्दलीय उम्मीदवारों के प्रचार के लिये आम सभाओं के आयोजन भी किए गए। राज्य के कुछ इने गिने स्थानों से यह भी जानकारी प्राप्त हुई है कि क्षेत्र के सभी उम्मीदवारों के एक ही मंच से भाषण देने की व्यवस्था की गई। यद्यपि संख्या की दृष्टि से यह प्रयोग बहुत कम स्थानों पर किया गया, पर आम मतदाताओं में इसकी प्रतिक्रिया अच्छी रही और इसे प्रशंसनीय परम्परा के रूप में स्वीकार किया गया।

कांग्रेस का जिन क्षेत्रों में उग्र विरोध रहा है उनमें इस बार यह बात विशेष रूप से दिखाई दी कि आम सभाओं को टाला गया तथा मोहल्लों में छोटी छोटी सभाएं करने की कोशिश की गयी। शहरी इलाकों में चुनाव प्रचार के सिलसिले में की गई आम सभाओं में सामान्यतः विरोधियों के पक्ष को जहां शांति पूर्वक सुना जाता था, वहां कांग्रेस की सभाओं में हुल्लड़बाजी और पत्थर फेंकने की घटनायें आम तौर पर हुई। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि इस बार के चुनाव प्रचार में कांग्रेस विरोध की आंधी बहुत जगह इतनी तेजी के साथ चली कि उसमें कांग्रेस दल द्वारा सरकार की रचना-त्मक योजनाओं के प्रचार की व्यवस्था नहीं टिक पाई। दूसरी बात यह कि चुनाव के दौरान में विरोधी पक्षों की जो आम सभाएं होती थीं उनमें सामा-न्यतः काफी भीड़ होती थी, और जिन सभाओं में राजा रानियों या उनके परि-वार के भाषण देने वाले होते थे उनमें तो भीड़ और भी बढ़ जाती थी। उदाहरण के लिये जयपुर में कुछ आम सभाओं में तो भीड़ के अब तक के सभी रिकार्ड तोड़ दिए गये। इन सभाओं में एक विशेषता यह भी होती थी कि इनमें किसी प्रकार के व्यवधान नहीं होते थे, जबकि सत्तारूढ़ दल की सभाओं में स्थिति प्रायः विपरीत रहती थी। राष्ट्रीय स्तर के बड़े बड़े नेताओं की

सभाओं में भी थोड़ा बहुत हुल्लड़ हुए बिना नहीं रहा, जबकि विरोधी पक्ष की यह सभाएं न केवल शांतिपूर्ण ही रहती थीं बल्कि काफी लम्बी देर तक चलती थीं। सत्तारूढ़ दल की ओर से भी कुछ आम-सभाएं काफी बड़ी हुईं जिनमें प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी और श्री कामराज ने भाषण दिए थे।

विरोधी दल की जिन सभाओं में राजा-रानी बोलने वाले होते थे उनकी एक विशेषता और भी थी। वह यह कि उनमें प्रमुख वक्ता कोई लम्बे चौड़े भाषण नहीं देते थे। उदाहरण के लिए महाराजा बृजेन्द्रसिंह, भरतपुर में मंच पर आते और श्री गिरिराज महाराज की जय बोलकर ही अपना भाषण समाप्त कर देते। इसी प्रकार जयपुर की सभाओं में महारानी गायत्री देवी कुछ वाक्य बोलकर ही अपना भाषण समाप्त कर देती थीं। फिर भी भीड़ अपरिमित होती थी।

कांग्रेस की आम सभाओं में केवल अब तक की उपलब्धियों का ही ब्यौरा देने का प्रयत्न किया जाता था, पर आम जनता पर उसका कोई प्रभाव नहीं देखा गया। सत्तारूढ़ दल की सभाओं में पुलिस काफी संख्या में उपस्थित रहती थी पर हुल्लड़ अथवा पथराव होने की स्थिति में प्रायः दर्शक बनकर खड़ी रहती थी।

झुंझनू संसदीय निर्वाचन क्षेत्र में एक साम्यवादी उम्मीदवार के चुनाव प्रचार में बाहर से आये कालेज के छात्रों ने भारी संख्या में योग दिया, उन्होंने जुलूस भी निकाले जिन पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया और गिरफ्तारियां की गईं।

चुनाव प्रचार के दौरान जुलूस, नारे और पर्चों का वितरण तो सामान्यतः सर्वत्र ही किया गया, पर भजन, कीर्तन अथवा गायन द्वारा उम्मीदवारों की बातों को आम जनता तक पहुंचाने की पुरानी परम्पराएं इस बार बहुत कम दिखाई दीं। चुनाव प्रचार में काम करने वाले लोगों के लिए खाने पीने की व्यवस्था उम्मीदवारों की ओर से आमतौर पर की गई थी, पर जहां उम्मीदवार विशेष रूप से सम्पन्न था वहां इन बातों का इन्तजाम खास तौर पर था। उदाहरण के लिए जयपुर शहर में मतदान के दिन स्वतंत्र पार्टी के कार्यकर्त्ताओं के लिए दिन भर में कई बार चाय और नाश्ते उनके स्थानों पर पहुंचते थे। मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए शराब की व्यवस्था भी जगह जगह की गई थी, इस बात की पुष्टि कई जगह की गई। कई चुनाव क्षेत्रों

से यह जानकारी भी मिली कि चुनाव के आस पास के दिनों में वहां पर से शराव के पीने–पिलाने सम्बन्धी नियमों को वाकायदा ढीला कर दिया था। मतदान के दिन से पहिले ही उन क्षेत्रों में शराव की बोतलें बड़ी संख्या में इधर उधर लाते–लेजाते देखा गया। चुनाव की व्यवस्था सभी जगह निर्दलियों की तुलना में दलीय उम्मीदवारों की अधिक प्रभावशाली, व्यापक तथा खर्चीली थी। इसका कारण स्पष्ट था। दलीय उम्मीदवारों के साधन अधिक थे जबकि निर्दलीय उम्मीदवारों को सब कुछ अपने ही बूते पर करना पड़ता था। चुनाव प्रचार में जहां निर्दलीय उम्मीदवार यह कहते थे कि दलीय बंधन के कारण पार्टी के प्रतिनिधि जन-हित के मामलों में स्वतंत्र निर्णय नहीं कर पाते हैं अतः उन्हें मत नहीं देना चाहिये, वहां दूसरी ओर दलीय उम्मीदवार निर्दलीय उम्मीदवार के लिए सभी जगह ऐसा कहते सुनाई दिये कि निर्दलीय उम्मीदवार विधान सभाओं में जाकर कुछ भी नहीं कर पाते हैं, क्योंकि दलीय संगठनों के मुकावले में अपनी उनकी स्थिति "नक्कार खाने में तूती" जैसी ही रहती है।

चुनाव प्रचार के सिलसिले में कुछ क्षेत्रों में वहुत ही व्यवस्थित ढंग से काम हुआ। झुंझनूं जिले में एक उम्मीदवार की ओर से सबसे पहिले एक सर्वेक्षण दल को प्रत्येक गांव में जाकर जाति वार सूची तैयार करने का काम सोंपा गया। यही दल साथ में प्रत्येक गांव के मुखियाओं की सूची भी तैयार करता जाता था जिनसे बाद में उम्मीदवार अथवा उनके प्रमुख प्रतिनिधि सीधा सम्पर्क करते थे। इस क्षेत्र के एक प्रमुख उम्मीदवार के व्यापारिक प्रतिष्ठानों में काम करने वाले सैकड़ों अधिकारी तथा कर्मचारी कई सप्ताह तक चुनाव प्रचार के निमित्त अपने परिवारों के साथ इधर ही रहे। इस क्षेत्र में चुनाव प्रचार के सिलसिले में वच्चों तथा स्त्रियों का भी व्यवस्थित ढंग से उपयोग किया गया। इस क्षेत्र में कई लोगों को जोकर की ड्रेसें पहिना कर भी घुमाया गया जो आम लोगों का मनोरंजन भी करता था और चुनाव प्रचार भी करता था।

चुनाव प्रचार के दौरान कई जगह बड़े पैमाने पर ऐसे चित्र भी बना कर दिखाये गये जिसमें कांग्रेस के कलेवर पर भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, तथा पक्षपात के दाग लगे हुये थे तथा उस पर विरोधी पार्टियां अपने पंजों से और पंखों से झपट्टा मार रही थी। इसी प्रकार के आशय वाले तरह तरह के चित्र कई स्थानों पर लगाये गये थे।

चुनाव प्रचार के दौरान शिष्टता और संयम के अभाव की शिकायतें अनेक स्थानों पर सुनने को मिलीं। यद्यपि दल विशेष से संबंधित लोगों ने इस प्रकार की शिकायतों को निराधार बताया है, पर वास्तविकता यह है कि चुनाव प्रचार के जोश में बच्चों तक को इस प्रकार नारे लगाने को प्रेरित किया गया जो शिष्टता की परिधि से बाहर के थे।

चुनाव प्रचार के दौरान विरोधी दलों की ओर से कांग्रेस के विरूद्ध आमतौर पर जो आरोप लगाये गये उनमें भ्रष्टाचार, पक्षपात, महंगाई, जीवन के लिये अनिवार्य वस्तुओं की भारी कमी, निरंतर कई वर्षों से शासनारूढ होने के कारण तानाशाही प्रवृत्तियों में वृद्धि तथा लाल फीताशाही को बढ़ावा देने की बातें मुख्य रही हैं। कांग्रेस के विरूद्ध वातावरण तैयार करने में गौहत्या पर प्रतिबंध न लगाने के निर्णय ने आग में घी का काम किया। पिछले कई वर्षों से प्रकृति के प्रतिकूल रहने के कारण कृषि-उत्पादन में निरंतर गिरावट आई है और इस कारण भी अनाज और पानी का संकट अभूतपूर्व बनता चला गया है। पर मतदाता इस बात को जानता हुआ भी इसे दर गुजर करता दिखाई दे रहा था। वह इन सबकी जिम्मेदारी भी सरकार के सिर पर थोपता था, और विरोधियों ने इस स्थिति का खुलकर लाभ उठाया।

चुनाव प्रचार में पोस्टरों का विशेष महत्त्व होता है क्योंकि इसके माध्यम से उम्मीदवार अपनी बात मतदाताओं तक आसानी से पहुंचा सकता है। यही कारण है कि प्रत्येक दल और उम्मीदवार अपनी नीति विषयक घोषणाओं तथा उपलब्धियों को पोस्टरों के द्वारा गली-गली और घर-घर पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं।

कांग्रेस की ओर से प्रकाशित पोस्टरों तथा फोल्डरों में एक ओर अब तक की उपलब्धियों का उल्लेख किया गया, वहां साथ ही राष्ट्रीय एकता, निर्माण संबंधी गतिविधियों, सुरक्षा संबंधी चुनौतियों, शिक्षा प्रसार के आंकड़ों का भी उनमें समावेश किया गया। कांग्रेस की प्रचार सामग्री अंग्रेजी और हिन्दी के साथ-साथ अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी प्रकाशित की गई। कांग्रेस के एक पोस्टर में बीसों चेहरे देश की विभिन्न वेश-भूषाओं में दिखाये गये जो राष्ट्रीय एकता का प्रतीक दिखाई पड़ता है।

स्वतंत्र पार्टी के पोस्टरों में एक कंकाल का चित्र दिखाया गया जो देश की जर्जर स्थितियों को प्रतिबिंबित करने वाला है। स्वतंत्र पार्टी के पोस्टरों

में कांग्रेसी शासन से मुक्ति दिलाने पर बल दिये जाने के साथ साथ विरोधी दलों की सरकार बन जाने पर किये जाने वाले विभिन्न कार्यों के वादे भी किये गये। पार्टी ने कुछ छोटी-छोटी पुस्तिकायें भी प्रकाशित कीं जिसमें राजस्थानी भाषा में शासन की कमियों को गद्य-पद्य में प्रस्तुत किया गया।

विभिन्न राजनैतिक दलों के साथ साथ ही कुछ गैर राजनैतिक दलों ने भी पोस्टर प्रकाशित किये जिनमें किसी दल या उम्मीदवार का समर्थन न करके योग्य, निष्पक्ष तथा ईमानदार उम्मीदवारों को मत देने की अपील की गई है। नशाबंदी का समर्थन करने वाले लोगों को मत देने पर भी इन पोस्टरों में जोर दिया गया है। संख्या में कम होने पर भी इन पोस्टरों ने जन-मानस पर काफी प्रभाव छोड़ा।

पर इन पोस्टरों को भी जहां एक पक्ष ने अपने प्रतिकूल माना, वहां सरकार विरोधी दलों ने उनकी भाषा का प्रयोग अपने पक्ष को मजबूत बनाने की दृष्टि से करने का प्रयत्न किया, यद्यपि इन पोस्टरों में राजनैतिक, सांस्कृतिक या नैतिक आदर्शों की रक्षा पर ही विशेष रूप से बल दिया गया था।

जनसंघ के पोस्टर भी काफी प्रभावोत्पादक रहे। उनकी भाषा तीव्र थी, जो मतदाता पर असर करती थी। सरकारी तंत्र से होने वाली परेशानियों का उल्लेख ऐसे ढंग से किया गया था कि बरसों से त्रस्त नागरिक को उनमें अपने मन की सी बात दिखाई देती थी। इन पोस्टरों की भाषा भारतीय संस्कृति के सनातन सिद्धान्तों का पुट भी लिये हुये थी जिसका धर्म प्राण वर्गों पर सीधा प्रभाव पड़ता था। महंगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार जैसी बातों से छुटकारे के नाम पर सरकार को अपदस्थ करने की जनसंघ की बात आम मतदाता को तुरन्त प्रभावित करती थी।

वामपंथी तथा दक्षिणपंथी साम्यवादियों की प्रचार सामग्री का जहां तक ताल्लुक है उसका आदर्शों तथा विचारधारा की दृष्टि से आम जनता पर विशेष असर नहीं मालुम हुआ। किन्तु वामपंथी साम्यवादी दल के पोस्टर और पर्चों की भाषा विशेष रूप में साहित्यिक पुट लिये हुये थी। इसमें देश की गरीबी को समाप्त करने के लिये साम्यवादी विचारधारा का जोरदार ढंग से प्रतिपालन किया गया। इनकी सीधी अपील किसान तथा मजदूर मतदाताओं से थी।

जनता पार्टी की चुनाव सामग्री केवल घोषणा पत्र तथा कुछ पुस्तिकाओं तक ही सीमित नहीं रही, इसके पोस्टर भी रंग बिरंगे वाक्यों द्वारा आम

मतदाता से शोषणविहीन समाज की स्थापना की अपील करते थे और कांग्रेस द्वारा जनता का विश्वास खो देने की बात को जोरदार ढंग से प्रस्तुत करते थे। सर्वोदय के सिद्धान्त की भाषा का इनमें विशेष प्रयोग रहा।

कांग्रेस, जनसंघ तथा स्वतंत्र पार्टी ने अपने चुनाव के प्रचार के लिये लाखों की संख्या में बिल्लों का भी प्रयोग किया। प्लास्टिक के बने हुये इन बिल्लों पर इन दलों के चुनाव चिन्ह बने हुये थे। हजारों की संख्या में बड़े, बूढ़े तथा बच्चे इन बिल्लों को लगाकर घूमते हुये सभी ओर दिखाई देते थे, जो दल विशेष की संख्या का अनुमान लगाने में सहायक माने जाते थे। टेम्पो, साईकिलों, स्कूटरों, तांगों आदि पर भी लोगों ने अपनी अपनी पसन्द के झंडे लगाये थे जो उन दलों की लोकप्रियता के प्रतीक समझे गये। असल में क्षेत्र में इन सबके तुलनात्मक तारतम्य को ही प्रायः विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रभाव का सूचक मान लिया जाता था।

[६]

सरकारी प्रभाव का उपयोग

संसदीय लोकतंत्र में एक राजनैतिक दल या दल-समूह सत्तारूढ़ होता है और अन्य दल या दल-समूह विरोधी के रूप में काम करता है तथा सत्ताकांक्षी होता है। आम चुनाव के साथ भी स्थिति यही रहती है। अर्थात प्रथम पक्ष सत्तारूढ़ रहते हुये ही चुनाव लड़ता है। ऐसी स्थिति में सत्ता का अप्रत्यक्ष प्रभाव तो सत्ताधारी व्यक्तियों-मंत्रियों, राज्यमंत्रियों, उपमंत्रियों आदि के साथ रहता ही है और आम चुनाव के पहिले और आम चुनाव के समय भी सामान्य प्रशासन के नियमों के अनुसार भी उन अधिकारियों के चुनाव क्षेत्रों में तथा बाहर भी जिन-जिन लोगों को, संस्थाओं, समूहों, संगठनों आदि को लाभ पहुंचता है, सहायता, ऋण, अनुदान आदि प्राप्त होता है, वे उनके अनुकूल बनते हैं, अहसान मंद होते हैं, प्रशंसक बनते हैं और इससे अधिक निकटता तथा सम्पर्क बनते हैं तो उनके समर्थन में तथा पक्ष में प्रायः काम भी करते हैं। इस दृष्टि से इस मांग में बल है कि आम चुनाव से निश्चित अवधि से पहिले देश में किसी भी दल विशेष का शासन न रहे बल्कि राष्ट्रपति शासन की स्थापना हो जाय, तभी सारे राजनैतिक दल समान स्तर पर आम चुनाव में शामिल हो सकते हैं और चुनाव लड़ सकते हैं, अन्यथा चुनाव की तराजू

सत्तारूढ़ दल के पक्ष में झुकेगी और चुनाव कभी निःसंदेह रूप में निष्पक्ष तथा न्यायपूर्ण नहीं हो सकेगा।

लेकिन इस प्रश्न को हम छोड़ देते हैं क्योंकि दुनियां के किसी भी संसदीय लोकतांत्रिक देश में ऐसी परम्परा नहीं है और इसे कोई भी सत्ताधारी दल स्वीकार नहीं करेगा तथा राजनीति शास्त्र के विद्वान भी शायद ही इसे स्वीकार करेंगे। यहां हम इतना ही विचार करना चाहते हैं कि सत्तारूढ दल की ओर से अपने अप्रत्यक्ष प्रभाव और सामान्य प्रशासन के नियमों के अतिरिक्त असाधारण रूप से आम चुनाव में सफलता की दृष्टि से सत्ता तथा पद की शक्ति और प्रभाव का उपयोग कहां तक किया गया।

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कह देना आवश्यक है कि हम किसी व्यक्ति विशेष पर कोई आरोप लगाना नहीं चाहते, केवल विचार और कार्य का जो रुख रहा है उसे ही प्रकट करना चाहते हैं और वह भी केवल बुराई को दूर करने की दृष्टि से।

लोगों की आम धारणा है कि सत्तारूढ़ दल द्वारा सत्ता के साधनों का न्यूनाधिक परिमाण में प्रायः सभी जगह उपयोग हुआ। नागौर क्षेत्र में सरकारी कर्मचारियों की चुनाव-प्रचार में काम करने की बात सामने रखी गई। यह भी हुआ कि पंचायत समिति क्षेत्रों में जहां-जहां जिन-जिन राजनैतिक दलों का विशेष प्रभाव था, वहां उन-उन दलों के समर्थन में वहां के कर्मचारियों, अध्यापकों तथा अन्य अधिकारियों को काम करना पड़ा।

एक विधान सभा क्षेत्र में कहा जाता है कि एक मंत्री महोदय अपनी जीप में गांव-गांव में जाते थे और जहां-जहां जो जो मांगें उनके सामने पेश की जाती थी, यथा कहीं प्रारम्भिक शाला की मांग होती थी, कहीं पीने के पानी, कहीं नलों की, कहीं कुओं के लिये बिजली की, तो कहीं सड़क की-उन सभी मांगों की स्वीकृति वे वहीं पर तत्काल देते थे और तुरन्त ही वहां कार्यारंभ हो जाता था। शाला की मांग होने पर शिक्षक पहुँच जाता था, पानी या बिजली की मांग होने पर नल पहुंच जाते थे, सड़क की मांग होने पर पत्थर या रोड़ी गिरवादी जाती थी। लोगों को संतोष हो जाता था। इस संबंध में हमारी चर्चा एक सरकारी अधिकारी से हुई तो उन्होंने कहा कि यह सब एक या दो सप्ताह के लिये है, इन सब के लिये कोई नियमानुसार स्वीकृतियां नहीं हैं, अतः मतदान होने के बाद शिक्षक अपने स्थान को लौट जायेगा, नल अपनी

जगह वापिस चले जायेंगे, पत्थर रोड़ी जहां पड़े है वहां पड़े रहेंगे। ठेकेदार चाहेगा तो उठा ले जावेगा, अन्यथा उनकी लागत चुनाव के खर्चे में लिखकर हिसाव वरावर कर लेगा।

अवकी वार सत्तारूढ दल के अत्यन्त प्रमुख व्यक्तियों ने आम सभाओं में खुले तौर पर कई वार कहा कि जिन क्षेत्रों ने उनके दलको मत देकर विजयी नहीं वनाया उनमें विकास कार्यों की जो स्थिति है उससे सभी मत-दाताओं को शिक्षा लेनी चाहिए। अगर वे अब भी वैसा ही करेंगे तो परिणाम प्रतिकूल ही होगा। उनके क्षेत्र सरकारी सहायता से अछूते ही रहेंगे। जिन क्षेत्रों में उन्हें विजय प्राप्त हुई थी वहां वड़े पैमाने पर विकास कार्य हुए और वहां कहा गया कि अगर वे इस क्रम को जारी रखना चाहते हैं तो सत्तारूढ दल का वरावर समर्थन करें। सत्तारूढ दल उन सभी को हर तरह से मदद करेगा। जहां-जहां से उस दल के प्रमुख व्यक्ति खड़े हुए, वहां गांवों में जल-प्रदाय योजना, विजली, पोलीटेक्निकल स्कूल, अन्य स्कूल आदि के शिलान्यास वड़े पैमाने पर किए गए। कुछ ऐसे स्थानों पर भी ऐसी योजना का आरम्भ किया गया जहां से पिछली वार तो सत्तारूढ दल विजयी नहीं हुआ था पर अब की वार उक्त दल के प्रत्याशी के जीतने की आशा थी या उसे जिताना आवश्यक था।

सरकार की ओर से दिए जाने वाले तकावी, अनुदान, ऋण और सहा-यता आदि की रकमें चुनाव के पहिले के तीन महीनों में वड़े परिमाण में व्यक्तियों, सहकारी समितियों आदि को दी गई। जहां वे नियमानुसार पुराने ऋण आदि के अदा न होने या अन्य नियमों की पूर्ति न होने के कारण या अन्य किसी निर्योग्यता के कारण नहीं दिये जा सकते थे, वहां या तो पुरानी अदायगी करके वाकी अधिक रकम दे दी गई अथवा नियम ढ़ीले करके या अन्य प्रकार से रुपया दिया गया। इसी प्रकार से राजस्थान में पड़ने वाले सूखे तथा अकाल के लिये स्वीकृत रकम के लिए भी यह कहा गया है कि उसका उपयोग चुनाव में प्रभाव वढ़ाने के लिए किया गया। यह भी सुना गया है कि कहीं कहीं चुनाव के ठीक पहले दिन मजदूरों और कर्मचारियों को सप्ताह या पन्द्रह दिन की मजदूरी इकट्ठी दी गई और उन्हें तथाकथित सरकारी उम्मीदवारों को मत देने के लिए प्रेरित किया गया। यह भी कहा गया है कि अकाल के लिए वास्तव में जिन क्षेत्रों में आवश्यकता थी वहां कम सहायता स्वीकृत की गई और जहां राजनैतिक दृष्टि से समर्थन प्राप्त करने के लिए अधिक सहायता देना

आवश्यक था, वहां के लिए अपेक्षाकृत अधिक उदारता से रकमें मंजूर हुई और उनका उपयोग मत-प्राप्ति के अनुकूल वातावरण बनाने और मतदाताओं को अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने में किया गया।

यह भी सुनने में आया कि सभी जगह केवल प्रदेश में सत्तारूढ दल को ही सत्ता के प्रभाव का लाभ पहुंचा हो यह बात नहीं थी, कहीं कहीं अधिकारियों के अपने अपने झुकाव का भी असर पड़ा। कम से कम चुनाव क्षेत्र में सरकारी साधनों का उपयोग अन्य राजनैतिक दल के प्रत्याशी के लिए उसके औद्योगिक तथा साम्पत्तिक प्रभाव के कारण किया गया और सत्तारूढ दल का प्रत्याशी उससे वंचित रहा। यही नहीं, सत्तारूढ दल की सभाओं में पथराव आदि होने पर भी अधिकारियों ने रोकथाम नहीं की और उसके विपरीत अन्य दल के साथ उनकी गाड़ी बराबर रही। इससे प्रतीत होता है कि कहीं कहीं सरकारी साधनों का उपयोग प्रशासन अधिकारियों की अपनी व्यक्तिगत पसन्द या प्रभाव के अनुसार भी हुआ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आम चुनाव में सरकारी साधनों का स्वरूप यह रहा—

(क) सत्तारूढ दल के प्रमुख पदाधिकारियों ने अपने पद का आम चुनाव में मतदाताओं को अपनी ओर खेंचने में उपयोग किया।

(ख) सरकारी दौरों और सरकारी वाहनों का उपयोग अपने क्षेत्रों में या अन्य क्षेत्रों में मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए अवसर किया।

(ग) सरकारी ऋण, सहायता, अनुदान आदि के उपयोग में अपने दल के अनुकूल बनाने की दृष्टि प्रायः रखी।

(घ) अनेक सरकारी कर्मचारियों का उपयोग अधिकतर अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव के काम में मदद के लिए किया गया।

(ङ) सरकारी पद पर होने के कारण अनेक प्रकार के आश्वासन और स्वीकृतियां मतदाताओं की प्रतिकूलता हटाने की दृष्टि से दी गई।

---

[७]

चुनाव जीतने में विभिन्न तत्वों का प्रभाव

यह तो स्पष्ट ही है कि चुनाव में उम्मीदवारों की विजय में अनेक बातों का महत्व होता है। उन सभी पर एक एक कर विचार करना समीचीन होगा। इस प्रसंग में यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि जहां कुछ बातों का उम्मीदवारों के निर्धारण तथा उन्हें दलीय टिकट दिये जाते समय अत्यधिक महत्त्व रहता है वहां अनेक दूसरे तत्व चुनाव-दंगल शुरू हो जाने के बाद उम्मीदवारों के हारने तथा जीतने में अपना प्रभाव दिखाते हैं।

सबसे पहिले इस प्रसंग में जाति तथा धर्म के महत्वपूर्ण योगदान पर विचार करना उचित होगा। सैद्धान्तिक दृष्टि से देश के सभी राजनैतिक दल अपने बारे में सांप्रदायिक कट्टरता तथा जातिगत संकीर्णता से मुक्त होने का दावा करते हैं। कांग्रेस देश का सबसे बड़ा राजनैतिक दल है जो अपने आप को राष्ट्रीय विचारधारा से अनुप्रमाणित मानता है। उसकी नीति संप्रदाय निरपेक्षता की है, जिसे उसने देश के सत्तारूढ दल के नाते राष्ट्रीय नीति के रूप में घोषित किया है और उस पर अमल भी किया जाता रहा है। उधर जनसंघ भी अपने आपको धार्मिक निरपेक्षता का समर्थक बताता है। उसने अपने इस दावे की पूर्त्ति के लिए अनेक मुसलमानों को सदस्यता भी प्रदान की है। यही नहीं, उसने अनेक चुनावों में मुसलमान उम्मीदवारों का समर्थन ही नहीं किया है, उसके टिकट पर कई स्थानों पर मुसलमान जीतकर विधान सभाओं में पहुँचे हैं। स्वतन्त्र दल भी सभी धर्मों के प्रति समान आदर का प्रतिपादन करता रहा है। उधर साम्यवादी दल तो धर्म-निरपेक्षता का प्रबल समर्थक रहा ही है। इस प्रकार देश के सभी राजनैतिक दल धार्मिक रूढ़िवादिता तथा कट्टरता को प्रत्यक्षत: अस्वीकार करते रहे हैं, इनमें से कोई भी सिद्धांतत: जातिवादिता को प्रोत्साहन नहीं देते, किन्तु यथार्थ में इन सभी की नीतियां तथा व्यवहार इनके घोषित विचारों से मेल नहीं खाते। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे सभी को न्यूनाधिक परिमाण में स्वीकार करना होगा।

यद्यपि भारत के संविधान में सभी बालिग़ नागरिकों को चुनाव में खड़े होने तथा लड़ने का अधिकार है, परन्तु इस बात को कौन नहीं जानता कि विधान सभाओं तथा लोकसभा के लिए टिकट देते समय सभी राजनैतिक

दल इस वात का ध्यान रखते हैं कि अमुक चुनाव क्षेत्र में कौनसी जाति के मतदाताओं का प्रतिशत कितना है। यही नहीं, इस वात का निर्णय करते समय यह वात भी ध्यान में रखी जाती है कि अमुक जाति के लोगों पर अमुक व्यक्ति का कितना प्रभाव है। एक वात और भी है और वह यह है कि एक राजनैतिक दल द्वारा अमुक जाति के व्यक्ति को टिकट दिये जाने के वाद दूसरा राजनैतिक दल भी यही प्रयत्न करता है कि उसका उम्मीदवार भी उसी जाति का हो ताकि दोनों समान रूप से उन मतदाताओं को प्रभावित कर सकें। इस प्रसंग में लाडनूं विधान सभाई क्षेत्र का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। वहां एक राजनैतिक दल ने जहां राज्य के एक पुराने मंत्री तथा भूतपूर्व विधान सभा के अध्यक्ष को टिकिट दे दिया तो प्रतिपक्षी दलों ने भी उसी जाति के एक व्यक्ति को अपना उम्मीदवार घोषित कर दिया तथापि दूसरे उम्मीदवार की तुलना में योग्यता की दृष्टि से कहीं टिक नहीं सकता था। इसी प्रकार अमुक चुनाव क्षेत्र में अमुक धर्म या जाति के प्रतिशत में भारी मतदाताओं के होने पर उसी धर्म या जाति के उम्मीदवार को टिकिट देने की नीति वार-वार स्पष्ट देखी गई।

न केवल टिकट देते समय और चुनाव प्रचार के दौरान ही वल्कि मतदान के समय भी उम्मीदवार की जाति का आमतौर पर काफी ध्यान रखा जाता है। कम पढ़े लिखे लोगों को तो जातिगत या धर्मगत आधार पर प्रभावित किया ही जाता है, इतना ही नहीं, पढ़े लिखे तथा समझदार मतदाता भी अनेक वार जातिगत या धर्मगत विचारों से प्रभावित होकर प्रतिपक्ष के योग्य उम्मीदवार के मुकावले में अपनी जाति या धर्म के कम योग्य उम्मीदवार को अपना समर्थन देते देखे गये हैं। इस प्रकार सिद्धान्तों और आदर्शों में घोषित धर्मनिरपेक्षता चुनाव के प्रसंग में व्यवहार के स्तर पर वहुत कम स्थानों पर पूरी उतरती दिखाई दी।

अव हम व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा उनके कर्मचारियों द्वारा चुनाव में भाग लेने तथा उम्मीदवार की हार-जीत में उनके प्रभाव संबंधी पहलुओं पर विचार करेंगे। इस वार के आम चुनावों में यह वात पूरी तौर पर स्पष्ट हो गई है कि न केवल कांग्रेस ही, जिसे पूंजीपतियों से प्रभावित दल की संज्ञा विरोधी दलों द्वारा दी जाती रही है, वल्कि जनसंघ तथा स्वतंत्र पार्टी ने भी राजस्थान के विभिन्न लोक सभाई क्षेत्रों के लिये वड़े-वड़े धनी तथा उद्योगपतियों को टिकट दिये। परिणाम यह हुआ कि इन धनिकों के व्यापारिक

प्रतिष्ठानों, कम्पनियों और मिलों में काम करने वाले कर्मचारी ही नहीं, बल्कि ऊंचे-ऊंचे पदाधिकारी भी अपने पूरे के पूरे परिवार के साथ चुनाव में काम करने के लिये देश के विभिन्न भागों से आये। वे चुनाव समाप्त होने तक यहीं रहे, इन लोगों को उन कारखानों से वैतनिक अवकाश दिये गये होंगे। उन कारखानों के भौतिक साधनों, विशेष रूप से सवारियों आदि का खुलकर चुनाव में उपयोग किया गया।

इसी प्रकार अनेक सार्वजनिक, व्यापारिक तथा शिक्षण संस्थाओं के कर्मचारियों का भी चुनाव में उपयोग किया गया। ऊपर बताये गये व्यापारिक संस्थानों के कर्मचारी जहां अपने "मालिक" के चुनाव प्रचार के सिलसिले में राजस्थान आये, वहां विभिन्न सार्वजनिक संस्थाओं और संस्थानों के कर्मचारियों ने उम्मीदवार विशेष के साथ अपनी सहानुभूति होने के कारण अथवा परोक्ष रूप से उसे जिताने के उद्देश्य से उसे योग दिया है। अनेक खादी संस्थाओं के कार्यकर्ता जहां अबकी बार खुलकर चुनाव-प्रचार में सामने आये, वहां कई शिक्षण संस्थाओं में काम करने वाले लोग चुनाव-प्रचार में इसलिये जुट पड़े कि वे किसी न किसी उम्मीदवार को जिताने में रूचि ले रहे थे या उन्हें इस प्रकार की रूचि लेनी पड़ी।

क्षेत्रीय तथा धार्मिक भावनाओं का भी चुनाव में कम महत्व नहीं रहा। अनेक स्थानों पर उम्मीदवार विशेष का यह कह कर विरोध किया गया कि वह उस क्षेत्र का रहने वाला नहीं है जिससे उसे खड़े होने के लिये टिकट दिया गया है। यद्यपि आमतौर पर यही परंपरा अपनाई जाती रही है कि संबंधित क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति को ही उससे लड़ने के लिये टिकट दिया जाय, पर कहीं कहीं बाहर के व्यक्तियों को भी क्षेत्र विशेष से लड़ने के लिये टिकट दिया जाता रहा है। राजस्थान में तो इस बार चुनाव संसदीय क्षेत्रों से लड़ने के लिये जिन लोगों को विभिन्न राजनैतिक दलों ने टिकट दिये उनमें राजस्थान से प्रायः बाहर रहने वाले लोग ही अधिक हैं। एक स्थान पर अमुक उम्मीदवार का यह कह कर विरोध किया गया कि वह उस क्षेत्र का रहने वाला नहीं है, वहां अन्य उम्मीदवार को जो उसी क्षेत्र का रहने वाला था यह कह कर विरोध किया गया कि उसने संसदीय या राष्ट्रीय स्तर पर कितना ही योग दिया हो, अपने क्षेत्र को तो गत पांच वर्षों में एक बार भी नहीं संभाला है। इस प्रकार स्थानीय लोगों के सोचने और फैसले देने के

तौर-तरीके भिन्न भिन्न रहे। अपने स्वार्थ के लिये तर्क को तोड़ मरोड़ कर पेश करने की प्रवृत्ति आम तौर पर पाई गई।

इसी प्रकार भूतपूर्व राजाओं और जागीरदारों के प्रभाव ने भी इस बार कई चमत्कार दिखाये। इस बार सामंती तत्वों ने चुनाव संबंधी गतिविधियों को जितना प्रभावित किया है उतना संभवत: पहिले कभी नहीं किया। इसका एक मुख्य कारण प्रतिपक्षी दलों का चुनाव गठबन्धन रहा है। इसके फलस्वरूप राजघरानों तथा सामंती परिवारों को केवल कुछ चुने हुये उम्मीदवारों को ही अपनी पूरी ताकत के साथ समर्थन देने का अवसर मिल गया और इसका परिणाम यह हुआ कि इनमें से अधिक विजयी होकर सामने आये। एक ओर जयपुर-जोधपुर के राजघरानों ने विरोधी दलों के उम्मीदवारों को अपना समर्थन दिया और जयपुर की महारानी स्वयं स्वतंत्र दल की ओर से चुनाव में खड़ी हुई तो दूसरी ओर उदयपुर के राजघराने ने कांग्रेस का समर्थन किया और बीकानेर के महाराजा ने निर्दलीय के रूप में चुनाव लड़ा। चाहे किसी राजघराने ने किसी पक्ष को समर्थन दिया हो, इतना अवश्य स्पष्ट हो गया कि सामन्ती व्यवस्था के इन अवशेषों का अभी भी आम जनता पर काफी प्रभाव है और जनता में इनके प्रति जो आकर्षण रहा है उसका अबकी बार खुल कर उपयोग किया गया है।

राजामहाराजाओं तथा राज-परिवारों के अधिकांशत: विरोधी दलों के साथ चुनाव मैदान में उतरने का स्पष्ट परिणाम एक तो यह हुआ है कि कांग्रेसी क्षेत्रों में प्रीविपर्स के संबंध में नेताओं का परिवर्तित रुख सामने आया है। कांग्रेस के कोषाध्यक्ष अतुल्य घोष ने जयपुर में साफ तौर पर यहां तक कह दिया कि प्रीविपर्स चालू रखी जाय या बंद करदी जाय—इस प्रश्न पर सरकार को फिर से विचार करना होगा। उधर श्री पाटिल ने प्रीविपर्स के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार की वर्तमान नीति को ही बनाये रखने पर बल दिया। प्रश्न यह उठता है कि राजा महाराजाओं को चुनाव में भाग लेने से रोकने के लिये कोई औचित्य भी है कि नहीं? जब कोई भी अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी चुनाव में भाग ले सकते हैं, जब संपत्तिशाली लोग अपनी पूंजी के बल पर प्रत्यक्ष रूप से भाग ले सकते हैं, तब राजा महाराजाओं को प्रीविपर्स के नाम पर चुनाव-दंगल में उतरने से रोकने के लिये कहां औचित्य बच रह जाता है—यह एक विचारणीय प्रश्न है। इन पुराने राजघरानों के

प्रति अब भी जो जन-मानस में आकर्षण बच रह गये हैं, उन्हें सत्ता के बल पर समाप्त करना संभव नहीं हो सकता। यह आम लोगों के अनेक वर्गों की राय बनी है।

चुनाव में कुछ ऐसे लोग भी सामने आये हैं जो सरकार में ऊंचे पदों पर काम करते रहे हैं, अब उन्होंने अवकाश प्राप्त कर लिया है और चुनाव मैदान में उतर आये हैं। जयपुर के एक उम्मीदवार जन सेवा आयोग के अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त हैं। चूरू जिले के एक विधान सभा-क्षेत्र से खड़े होने वाले एक उम्मीदवार राजस्थान की न्याय सेवाओं से अवकाश प्राप्त कर इस दंगल में उतरे थे। स्पष्ट है कि इस प्रकार के व्यक्तियों को अपनी पूर्व सेवाओं का लाभ चुनाव में मिलना स्वाभाविक ही है और सामान्य उम्मीदवारों के मुकाबले उनकी विशेष स्थिति रहती है उसका लाभ निश्चित ही उन्हें मिलता है। इस व्यवस्था को चालू रखा जाय अथवा इस पर प्रतिबंध लगाया जाय, यह एक विचारणीय प्रश्न है जिस पर आम लोगों की अलग अलग राय है।

व्यक्ति के चरित्र का चुनाव-प्रचार में किस हद तक शस्त्र के रूप में प्रयोग किया जाय, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। चुनाव-प्रचार में आम तौर पर यह देखा गया है कि भाषणों, नारों तथा पर्चों और पोस्टरों में प्रतिपक्षी उम्मीदवार के संबंध में कभी कभी अनर्गल आरोप लगाये जाते हैं, चरित्र संबंधी लांछन लगाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, जिसका तात्कालिक लाभ भले ही किसी उम्मीदवार को मिल जाता हो, पर इससे सामाजिक मान्यताओं तथा मर्यादाओं की जड़ों पर ही ऐसा कुठाराघात होता है कि उसके दूरगामी परिणाम होते हैं। झुंझनू चुनाव क्षेत्र में कांग्रेस तथा स्वतंत्र दोनों ही उम्मीदवारों के सम्बंध में ऐसी बातें सामने लाई गई। अन्य क्षेत्रों में भी चुनाव सभाओं में आमतौर पर यह प्रवृत्ति प्रायः दिखाई दी कि प्रतिपक्षी उम्मीदवारों का काला पक्ष जहां तक संभव हो जनता के सामने रखा जाय ताकि उन्हें लोक दृष्टि में गिराकर उनके चुनाव जीतने की संभावना कम की जा सके। इस बात की आवश्यकता सभी समझदार लोगों ने अनुभव की कि चुनाव प्रचार में दलीय नीतियों और आदर्शों के बल पर ही मतदाताओं को प्रभावित किया जाना चाहिये। ऐसा होने पर ही चुनाव के बाद होने वाली पारस्परिक कटुता के लिये कोई गुन्जाइश नहीं रहेगी। लोकतंत्र में स्वस्थ परंपराओं की दृष्टि से यह बात नितान्त आवश्यक है।

चुनाव सभाओं में हुल्लड़, पथराव, जुलूसों के समय अशान्त वातावरण आदि भी चुनाव के दिनों में सामान्य बात हो जाती है। जयपुर में खासतौर पर यह देखा गया कि कांग्रेस की चुनाव सभाओं में इतनी हुल्लड़ बाजी होती थी कि वक्ता के विचार जनता तक पहुँच ही नहीं पाते थे। प्रारंभिक सभाओं में तो पत्थर भी फेंके गये जो बोलने वाले मंत्री के पैरों में आकर गिरा। इतना ही नहीं कांग्रेस चुनाव प्रचार उद्घाटन के दिन आयोजित की गई सभा में जब एक बड़े कांग्रेसी नेता बोलने लगे तो उनकी बातें भी नहीं सुनी गई और उन्हें भाषण थोड़ी ही देर में समाप्त करना पड़ा। इसी प्रकार प्रधान मंत्री तथा कांग्रेस अध्यक्ष की सभाओं में भी हुल्लड़बाजी की गई। लोगों की यह आम राय है कि इस प्रकार की हुल्लड़बाजी से मतदाता को प्रभावित करने की जो लोग सोचते हैं वे भ्रम में हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सभी लोगों को सभी पक्षों की बातें सुनने का हर संभव मौका दिया जाय और उसमें से उचित-अनुचित का निर्णय करके मतदाता अपने मत का प्रयोग करे। तभी निष्पक्ष जनमत संभव हो सकता है।

इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो विरोधी पक्ष वालों के साथ मारपीट तक की घटनाएं घटी हैं। मतदाताओं को इधर-उधर उड़ाकर ले जाने के समाचार भी मिले। विरोधियों के प्रभाव से बचाये रखने की दृष्टि से मतदाता को कुछ समय अमुक स्थान पर ही रखने की व्यवस्थाएं भी की गई। ये सभी प्रवृत्तियां जनतंत्र में तानाशाही के अंकुर पैदा करने में सहायक होती है। जनतंत्र की नींव मतदाता के स्वस्थ चिंतन तथा निष्पक्ष निर्णय पर आधारित है। किसी भी दल अथवा व्यक्ति को यह हक़ हासिल नहीं है कि वह अपनी बात को ही सही समझ कर अमुक पक्ष पर बलात् थोपने का प्रयत्न करे। उसे अपनी विचारधारा बार-बार लोगों तक पहुंचाने की छूट है, तथ्यों के आधार पर अपनी बातों को लोगों के गले उतारने की भी छूट है पर लोकमत को जबरदस्ती बदलने के प्रयत्नों का जनतंत्र में कोई स्थान नहीं माना जा सकता। अधिकांशत: निष्पक्ष लोगों की यह आम राय प्रकट हुई। यह उचित तो है ही समाज और लोकतंत्र के हित में भी है।

[८]

चुनाव का व्यय

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले एक अंग्रेजी दैनिक पत्र में देश भर में आम चुनाव पर होने वाले खर्चे का अनुमान तीस करोड़ आंका गया था। वहीं

से प्रकाशित होने वाले हिन्दी दैनिक में यह खर्च साठ करोड़ माना गया। यह सब जानते हैं कि कानूनी मर्यादा एक उम्मीदवार के खर्चे की विधान सभा क्षेत्र के लिये नौ हजार की रखी गई है और लोक सभा क्षेत्र के लिये पच्चीस हजार की। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह मर्यादा विल्कुल निरर्थक हो गई है, केवल कागजी और कानूनी रह गई है। यह स्थिति इतनी स्पष्ट हो गई हैं कि लोक सभा में भी कहा जाने लगा है कि इस प्रकार के खर्च संबंधी कानून को हटा देना ही ईमानदारी की वात होगी। कभी कभी इस मर्यादा को वढ़ाने की वात भी कही जाती है, लेकिन आज जितना खर्च आम चुनाव पर किया जा रहा है, उसमें कोई मर्यादा रह भी सकती है, यही भरोसा उठ सा गया है।

जालौर जिले के एक विधान सभा क्षेत्र के निर्दलीय उम्मीदवार ने जिनका स्थान मत प्राप्ति के लिहाज से तीसरा रहा और जिन्हें लगभग पांच हजार मत प्राप्त हुये होंगे, वताया कि इस चुनाव में लगभग उन्तीस हजार रुपये खर्च हो गये हैं। ऐसे उम्मीदवार भी हैं जिनके वारे में कहा जाता है कि उनको जो रुपया चुनाव–कार्य में सहायता के रूप में प्राप्त हुआ वह लगभग सारा का सारा मकान वनवाने में खर्च कर दिया और चुनाव में कुछ भी खर्च नहीं किया। इसी प्रकार का उदाहरण निर्दलीय उम्मीदवार का ऐसा भी है जिन्हें पांच सौ रुपये के नोटों का हार जनता की ओर से पहनाया गया, उसमें लगभग सौ रुपया खर्च हुआ, वाकी जमा है। ऐसे भी निर्दलीय उम्मीदवार हैं जिन्हें केवल जमानत का रुपया ही जमा करवाना पड़ा और किसी समर्थ उम्मीदवार से उन्हें हजार पांच सौ या चार पांच हजार रुपया तक प्राप्त हो गया। शायद इसलिये कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो हर पांचवें वर्ष किसी उपयुक्त क्षेत्र से जहां से उन्हें कुछ रुपया वैठ जाने के लिये मिल सके इसी दृष्टि से खड़े हो जाते हैं।

यह तस्वीर का एक पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि राजस्थान के ही एक लोक सभा क्षेत्र में दो उद्योगपतियों का मुकावला हुआ। एक उम्मीदवार के पास लगभग पांच सौ जीपों का काफिला था, तो दूसरे के पास लगभग ५०–६० का। दोनों ओर से भोजन, नाश्ता, चाय पानी आदि की सुन्दर व्यवस्था थी, एक की ओर से वहुत व्यापक और खुले पैमाने पर, दूसरे की ओर से कुछ सीमित परिमाण में। इस भोजन व्यवस्था में चाय, सिगरेट, शराव, मांस, फल, रोटी, मिठाई सभी प्रकार के खाद्य तथा पेय पदार्थों का

प्रवाह अनवरत बहता रहा। इसमें लोगों को उनके आर्थिक और सामाजिक स्तर तथा उपयोगिता के आधार पर अलग-अलग बांटा गया था। जिनके प्रभाव में अधिक मत होते थे उन्हें उच्च स्तर का माना जाता था और उनकी अधिक खातिर की जाती थी।

यह भी कहा जाता है कि अनेक क्षेत्रों में उम्मीदवारों की ओर से मत-दाताओं को नकद रुपये भी बांटे गये। कुछ क्षेत्रों में दो रुपये का नोट कुछ में दस रुपये के नोट तक की बात सुनने में आई। कुछ क्षेत्रों में प्रभावशाली उम्मीदवार जीप में नोटों के बक्स लेकर निकलते बताये जो गांवों में अपने एजेन्टों को मतदाताओं को देने के लिये बांटते थे, जिनका हिसाब न उम्मीदवार रखते थे, न एजेन्ट और न शायद मतदाता। 'जहां नोट वहां वोट' यह कहावत सुनने में आई।

एक क्षेत्र में यह धारणा पाई गई कि उक्त क्षेत्र में एक विजयी लोक सभा के उम्मीदवार को लगभग डेढ लाख मत प्राप्त हुये उसमें उन्हें एक राय के अनुसार लगभग सौ रुपया प्रति वोट कुल मिला कर खर्च पड़ा होगा। दूसरी राय के अनुसार यह खर्च दो सौ चार रुपये तक पहुंचा। इसमें आधी भी सचाई हो तो भी आम चुनाव का भयावह रूप सामने आता है। दूसरे उम्मीदवार को लगभग एक लाख वोट मिले, उनका खर्च दस रुपये प्रति वोट आया बताया जाता है।

इसमें संभवतः वह व्यय तो शायद शामिल ही नहीं है जो राजस्थान में सम्पन्न उम्मीदवारों की व्यापारिक और औद्योगिक फर्मों ने अपने अधिकारी-गण तथा कर्मचारीगण को सैकड़ों-हजारों की संख्या में दो-दो तीन-तीन महीने तक काम करने उन क्षेत्रों में भेजा, और उनके साधन इस काम में लगे। इन सारे अधिकारी-कर्मचारियों की अनुपस्थिति के कारण उन फर्मों के अपने काम का कितना आर्थिक तथा मानवीय नुकसान हुआ होगा—इसका तो हिसाब ही नहीं है।

इसी प्रकार सत्तारूढ दल या दलों की ओर से मतदाताओं को आर्थिक सहायतायें और ऋण दिये गये व अन्य जो सुविधायें प्रदान की गई, इनका हिसाब भी लगाया जाय। इसमें जो रकम डूब जायेगी या डूब जाने के लिये दी गई उसका भी मूल्यांकन करना होगा। इन सब अनुपयोगी योजनाओं तथा व्ययों से जो लगातार और लम्बे समय तक नुकसान होगा, इसका भी अनुमान किया जा सकता है।

यह हिसाब भी लगाना होगा कि सरकारी स्तर पर आम चुनाव की व्यवस्था में कुल खर्च चुनाव आयोग की ओर से कितना होता है तथा सरकारी विभागों तथा अर्ध सरकारी संस्थाओं द्वारा अधिकारियों के वेतन, भत्ते सवारी खर्च आदि में कितना होता है। इस सब का हिसाब चाहे चुनाव खर्च में शामिल न होता हो, पर होता इसी के संबंध में है और इसी के ऊपर है।

ये सारे आंकड़े हमें आम चुनाव पर होने वाले वित्तीय खर्च का अनुमान देंगे, फिर लोगों की शक्ति, मानसिक और शारारिक कितनी खर्च होती है, समय का कितना अपव्यय होता है, पैट्रोल आदि भौतिक साधन-शक्ति समाज की कितनी खर्च होती है, इस भारी मानवीय तथा भौतिक शक्ति के व्यय का भी हिसाब लगाया जाना चाहिये।

फिर इस सारे व्यय का राजस्थान की जनता के नैतिक स्तर पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे आंकने की भी जरूरत है। सचाई और ईमानदारी की हत्या आम चुनाव का पहिला और सर्वोपरि परिणाम प्रतीत होता है। मतदाता को वोट की कीमत मालूम हो गई है, वह राष्ट्र की या नैतिकता की पवित्र धरोहर नहीं है, उसमें स्वतंत्र विचार और निर्णय का स्थान नहीं है, वह लोकतंत्र और देश की स्वतंत्रता का रक्षक पत्र नहीं है, वह बाजार में बेचने की चीज है, जो जितनी अधिक धूर्तता से इसे बेच सकता है वह उतना ही कुशल माना जाता है। आम जनता के नैतिक स्तर गिराने में आम चुनाव शायद सबसे प्रबल और प्रभावपूर्ण उपकरण है।

उम्मीदवारों और मतदाताओं में इसके अपवाद नहीं हैं, इससे यह न माना जाय। विभिन्न दलों और निर्दलीय-दोनों प्रकार के उम्मीदवारों में ऐसे सराहनीय उदाहरण मौजूद थे जिन्होंने वास्तव में खर्च की कानूनी मर्यादा में ही खर्च किया और मतदाताओं में भी ऐसे लोग हैं जो किसी भी प्रलोभन के सामने नहीं झुके तथा अपनी अंतरात्मा के निर्णय के अनुसार ही जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्वक मत दिया अथवा मत नहीं भी दिया, पर कुल मिलाकर राजस्थान में जो झुकाव और सम्मान रहा वह उपर्युक्त प्रकार का ही मालूम देता है और यह आम चुनाव के सारे प्रश्न और पद्धति पर गंभीरता से विचार करने तथा संभव हो तो इसमें आमूल परिवर्तन की चुनौती भी हमारे सामने उपस्थित करता है।

---

[६]

मतदान

राजस्थान में १५–१८ और २० फरवरी को मतदान हुआ। मतदान की सारी व्यवस्था जहां चुनाव विभाग द्वारा की गई थी वहां उम्मीदवारों द्वारा भी चुनाव केन्द्रों से १०० मीटर की दूरी को छोड़कर अपने अपने अस्थाई कार्यालय चुनाव के दिन स्थापित किये गये थे, जहां उनके एजेंट मतदाताओं से वे पर्चियां ले लेते थे जो उम्मीदवारों द्वारा पहिले से मतदाताओं को घर जाकर बांटी जा चुकी थीं। इन पर्चियों के आधार पर मतदाता का नाम और उम्र आदि ढूंढने में दिक्कत नहीं होती थी, और चुनाव केन्द्र पर नियुक्त सरकारी कर्मचारी आसानी से मतदाता की प्रामाणिकता के बारे में निर्णय कर लेते थे। मतदान सुबह आठ बजे से शुरू होता और सायंकाल ५ बजे समाप्त हो जाता था। मतदान समूचे राज्य में पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार तीन दिन में समाप्त हो गया।

सामान्यतः सभी स्थानों पर चुनाव शांतिपूर्वक सम्पन्न हुआ। क्योंकि चुनाव के ४८ घन्टे पूर्व ही चुनाव प्रचार संबंधी सभी कार्यवाहियों पर कानूनन प्रतिबंध लगा दिया जाता है, इसलिये मतदान के दिनों में यों भी किसी प्रकार के झगड़ों की गुंजाइश नहीं रह जाती है। शेखावाटी के कुछ चुनाव केन्द्रों पर जहां राजपूतों की घनी बस्तियां थीं, कुछ छोटी मोटी घटनाएं हुईं, जिनमें मतदाताओं को लाने की बात पर कुछ तनाव पैदा हो गया।

यद्यपि मतदाताओं को लाने ले जाने में कोई भी उम्मीदवार सवारियों का प्रयोग कानूनन नहीं कर सकता है, पर अधिकांश स्थानों पर मतदाताओं को लाने ले जाने में सवारियों का प्रयोग किया गया बताया, पर यह सब काम कानून और अधिकारियों की आंख बचा कर किया गया। स्पष्ट है कि यह व्यवस्था उन्हीं क्षेत्रों में अधिक हुई जिनमें उम्मीदवार अपेक्षाकृत रूप से सम्पन्न तथा खूब खर्च करने की प्रवृत्ति वाले थे। चुनाव में काम करने वालों के लिये उम्मीदवारों की ओर से सभी प्रकार की व्यवस्था की हुई थी। झुंझनू क्षेत्र के एक उम्मीदवार की ओर से तो सभी कार्यकर्ताओं के लिये चाय, भोजन, आवास की समुचित व्यवस्था की गई थी।

मतदाताओं को लाने–ले जाने के लिये शहरी क्षेत्रों में घर-घर जाकर प्रयत्न करने होते थे। जिन राजनैतिक दलों के पास स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं की संख्या अधिक थी वे मतदाताओं को अधिक संख्या में जुटा पाये थे। स्पष्ट है कि काम कार्यकर्ताओं के अपने उत्साह के बल पर ही विशेष तेजी के साथ हो सकता था। ग्रामीण क्षेत्रों में मतदाताओं को जुटाने का काम अपेक्षाकृत कठिन था, क्योंकि वहां सवारियों की सुविधाएं इतनी आसानी से नहीं जुटाई जा सकतीं और दूसरी ओर मतदाता भी काफी बिखरे हुये क्षेत्रों में रहते हैं। फिर भी कुल मिला कर राज्य में मतदान का औसत आशा से अधिक ही रहा।

मतदान के दिन कुछ स्थानों पर काफी मनोरंजन पूर्ण घटनाएं सुनने को मिलीं। बताया जाता है जयपुर शहर के कुछ मतदान केन्द्रों पर कम उम्र की मुस्लिम महिलाओं को बुजुर्ग महिला मतदाता के स्थान पर बुर्का पहना कर भेज दिया गया, पर किसी प्रकार यह रहस्य खुल गया। दूसरे मतदान केन्द्रों पर अंधे, अत्यधिक वृद्ध, अपंग मतदाता भी अपने मत डालने के लिये दूसरों को साथ लेकर आये थे, जो मतदाताओं की जागरूकता का परिचायक था। मतदान का जोर सभी स्थानों पर दो पहर तक ही रहा। तीसरे पहर तो बहुत ही कम क्षेत्रों में, जहां के मतदान का औसत बहुत ही भारी था, मतदान चलता रहा।

अबकी बार मतदान की व्यवस्था काफी सरल बना दी गई थी। मतदान केन्द्रों पर केवल दो ही चुनाव पेटियां रखी गई थीं जिनमें से एक में विधान सभा के उम्मीदवारों के लिये तथा दूसरी में लोक सभा के उम्मीदवारों के लिये मतपत्र डालना पड़ता था। केवल यही नहीं अबकी बार एक व्यवस्था यह भी करदी गई थी कि मतपत्र उपस्थित सरकारी कर्मचारियों तथा उम्मीदवार के-एजेन्टों के सामने पेटी में डाला जाय। इस व्यवस्था का एक लाभ यह अवश्य हुआ कि मतदाता कोई भी अनावश्यक वस्तु पेटी में नहीं डाल सकता था। इसी प्रकार अवैधानिक मतपत्रों को डालने की गुंजाइश भी इस व्यवस्था के कारण समाप्त हो गई थी। कुछ मतदान केन्द्रों पर ऐसी भी घटनायें हुई कि वहां नियुक्त सरकारी कर्मचारियों ने जब किसी मतदाता को प्रभावित करने का प्रयत्न किया तो मतदाता ने उन्हें चले जाने के लिये कह दिया और फिर उसने अपना मत स्वतंत्र रूप से पेटी में डाला।

---

[१०]

चुनाव परिणामों के सम्बन्ध में पूर्व अनुमान

आम चुनाव के बारे में स्वभावतः जनता का रुख विविधता पूर्ण था। जैसा विनोबाजी का कहना था आम चुनाव को खेल की तरह, लीला की तरह मानना चाहिये। इसीलिए चुनाव लड़ने की बात नहीं, चुनाव खेलने की बात करनी चाहिये, लेकिन बहुत लोग खासकर उम्मीदवार और उनमें भी पुराने विधान-सभाई तथा लोक सभा के सदस्यों ने आम चुनाव के टिकट को बहुत ही महत्व दिया। खासकर सत्तारूढ़ दल के टिकिट प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक कशमकश तथा संघर्ष रहा। जिन-जिन लोगों ने टिकट चाहा और नहीं मिला, उनमें से अनेक अन्य दलों में चले गये या उन्होंने निर्दलीय के रूप में चुनाव लड़ा। राजस्थान में जनता पार्टी का निर्माण सत्तारूढ दल के असन्तुष्ट लोगों द्वारा हुआ। इस पार्टी के देर से बनने के कारण जब अलग से चुनाव चिन्ह नहीं मिला तो इसके सदस्यों ने अन्य दलों खासकर स्वतन्त्र और जनसंघ के चुनाव चिन्हों पर या निर्दलीय के रूप में अलग-अलग चुनाव चिन्हों पर चुनाव लड़ा। सत्तारूढ़ दल के अतिरिक्त अन्य दलों में टिकट प्राप्त करने के लिए इतनी उत्सुकता और संघर्ष नहीं देखा गया। प्रायः उपयुक्त उम्मीदवार प्राप्त करने की या उन्हें राजी करने का प्रयत्न ही दल की ओर से रहा। जो कुछ संघर्ष रहा भी होगा तो वह भी भीतर ही रहा। आम जनता में प्रकट नहीं हुआ।

आम चुनाव के लिए चलने वाले सारे प्रचार में और आन्दोलन में आम जनता की दिलचस्पी भी अलग-अलग पाई गई। कुछ लोग उम्मीदवारों की ओर से काम में आने वाली जीपों और अन्य वाहनों की संख्या से परिणाम नापते थे। कहा जाता है अमुक क्षेत्र में एक उम्मीदवार के पास पांच सौ जीपें हैं, दूसरे के पास तो पचास ही हैं, अतः पहला ही जीतेगा। कुछ लोग उम्मीद-वारों द्वारा दिये जाने वाले नाश्ते, चाय, शराब, मिठाई आदि से उनकी सफलता का हिसाब लगाते थे। कुछ लोग प्रचार और संघर्ष की व्यापकता और होहल्ले तथा प्रचार की गहराई, व्यवस्था की सुन्दरता, चुपचाप प्रचार तथा व्यक्तिगत सम्पर्क से सफलता का माप करते थे।

उम्मीदवारों में राजनैतिक दलों की ओर से खड़े होने वाले सभी अपनी अपनी जीत के बारे में आश्वस्त मालूम होते थे और सभी अपना-अपना हिसाब

बताते थे। कोई अमुक जाति, धर्म या क्षेत्र के आधार पर, कोई अमुक प्रकार के प्रभाव के आधार पर अपनी जीत निश्चित मानते थे। कुछ उम्मीदवारों की विजय अपने राजघराने के पुराने प्रभाव के कारण निश्चित मानी जाती थी। दल की विचारधारा की विशेषता या उम्मीदवार की स्वयं की योग्यता अथवा पात्रता का हाथ सफलता को आंकने में कम ही माना जाता था।

बहुत जगह झूंठी अफवाहें फैलाकर और मतदाताओं को धोखा देकर जीतने की भी कोशिश की गई। अमुक उम्मीदवार खड़ा ही नहीं है—बैठ गया है यह कह कर मतदाताओं को धोखा देने का प्रयास किया गया। एक दल के विशेष चिन्ह को प्रचारित करने का प्रयत्न करके जीतने की कोशिश की गई। जहां लोगों को विपरीत लगा वहां उम्मीदवारों की ओर से एक मत स्वयं के लिए प्राप्त कर दूसरा मत जनता की राय पर छोड़ देने की कोशिश की गई ताकि स्वयं का चुनाव तो पक्का हो ही जाय। इसमें कहीं-कहीं मामला उलट ही गया। एक स्थान पर यह कहा गया कि एक वोट तारे को तथा एक वोट नारे को अर्थात बैल जोड़ी को दिया जाय। कहा इसलिए गया कि विधान सभा में कांग्रेस दल जीत जाय और लोक सभा क्षेत्र का मत स्वतन्त्र को मिल जाय क्योंकि लोक सभा के लिए स्वतन्त्र पक्ष का उम्मीदवार बहुत लोकप्रिय था। इसी बात को दूसरे दल के उम्मीदवार ने या उसके एजेन्ट ने उलट कर समझा दिया कि लाल पर्चे में नारा और सफेद पर्चे में तारा। परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस पक्ष का विधान सभाई उम्मीदवार हार गया और स्वतन्त्र दल का उम्मीदवार जीत गया। लोक सभा के स्वतन्त्र पक्ष के उम्मीदवार को मत कुछ कम अवश्य मिले पर उसकी हार जीत पर इतना कुछ असर नहीं पड़ा। अल्प-शिक्षित, ग्रामीण तथा अनुसूचित जाति के मतदाता-समूह पर ऐसी बातों का विशेष प्रभाव रहा।

विभिन्न दलों तथा अनेक निर्दलीय उम्मीदवारों द्वारा भी अपने-अपने क्षेत्र की मतदाता सूचि का वार्ड नम्बर और मतदाता नवम्बर अपने चुनाव चिन्ह तथा स्वयं को मत देने की अपील, इन सब की पर्चियां घर-घर और प्रत्येक मतदाता को पहुँचाई गईं। वह इस तरह की पर्ची को लेकर मतदान केन्द्र पर आता था और मतदान केन्द्र के कर्मचारी को वह पर्ची दे देता था। उसमें नम्बर देख कर कर्मचारी उसका नाम आसानी से ढूंढ लेता था। यह पर्ची का तरीका सुविधा पूर्ण था पर चुनाव नियमों के अन्तर्गत नहीं था और अनिवार्य भी नहीं था। पर अनेक मतदान केन्द्रों पर मतदाता को इस प्रकार

की पर्ची लाने को कहा गया जो अनुचित था। अपनी थोड़ी सी सुविधा तथा परिश्रम के लिए जो करना मतदान केन्द्र के कर्मचारी के लिए आवश्यक था तथा उचित था वह न करके मतदाताओं को दल के प्रभाव में आने के लिए मजबूर किया गया। इसके परिणाम अवश्य कहीं-कहीं विपरीत पड़े होंगे, इसमें कोई शक नहीं।

राजस्थान के अनेक महत्वपूर्ण चुनाव क्षेत्रों में उम्मीदवारों की सफलता को सट्टे के जरिये नापने के भी प्रयत्न किये गये। इस प्रकार के सट्टे जहां कलकत्ते, बम्बई के उम्मीदवार थे या जिन क्षेत्रों में वर्षा तथा अन्य प्रकार के सट्टों का आम रिवाज है, विशेष जोर रहा। उम्मीदवारों की सफलता सम्बन्धी सट्टे केवल चुनाव क्षेत्रों में ही चले हों ऐसी बात नहीं, ये सट्टे कलकत्ता, बम्बई जैसे नगरों में भी राजस्थान के उम्मीदवारों के संबंध में चले। बीकानेर में समाजवादी दलों तथा कांग्रेस दल के उम्मीदवारों के संबंध में सट्टा चला। ८-१० तारीख के बीच श्री मुरलीधर व्यास की जीत के भाव २ आना और ४ आना रहे, जबकि श्री गोकुलप्रसाद की जीत के भाव ३ आना ४ आना रहे, पर वास्तविक परिणाम बिल्कुल उल्टा ही आया।

इसके विपरीत इन्हीं तारीखों के आसपास झुंझनूं में श्री राधाकृष्ण बिरला और श्री राधेश्याम मुरारका की जीत के भाव बराबर से ६ आने तक और सैंतीस रुपये से साढ़े चार रुपये तक रहे जबकि साम्यवादी उम्मीदवार के भाव चार रुपये से सात रुपये तक गये। इन सट्टों में लाखों रुपये की हार-जीत राजस्थान में तथा बाहर हुई बताई जाती है।

इसी प्रकार लूणकरणसर में जनता पार्टी के उम्मीदवार तथा निर्दलीय उम्मीदवार में ही मुकाबला बताया जाता था, कांग्रेस दल के उम्मीदवार का सट्टे में कोई स्थान नहीं था, पर विजय अंत में कांग्रेस के उम्मीदवार की हुई। इस प्रकार से सट्टे केवल अनुमान ही होते हैं जो झूठे ही साबित हो जाते हैं और कभी-कभी सच्चे भी। प्रायः मूर्ख लोग इसमें फंसते हैं और धूर्त लोग इससे लाभ उठा ले जाते हैं। पर ग्राम जनता में भी इस सट्टे के भावों के प्रति गहरी दिलचस्पी उक्त क्षेत्रों में देखी गई।

शिक्षित और शहरी वर्ग में आम चुनाव के दौरान सामान्यतः रुख आलोचनात्मक और असंतोषयुक्त पाया गया। शहरी जनता के साथ सम्पर्क भी कांग्रेस के वरिष्ठ लोगों के साथ कम पाया गया। सम्पर्क में जनसंघ पहले नम्बर तथा स्वतंत्र दूसरे नम्बर पर था और इन दोनों के निकट सम्पर्क के

कारण खासकर जयपुर जैसे शहरों में इनका प्रभाव सर्वाधिक रहा। जनसंघ के पास आम जनता में घुलने मिलने वाले छोटे-मोटे स्वयंसेवक कार्यकर्ता अधिक संख्या में पाये गये। स्वतंत्र दल के पास राजा-जागीरदार, सेठ-साहूकारों से संबंधित तथा वैतनिक कार्यकर्ता काफ़ी संख्या में थे, उनकी सुविधा की देखभाल भी काफी थी, जबकि कांग्रेस दल के पास दोनों प्रकार के कार्यकर्ताओं की कमी, उत्साह पूर्वक तथा भाव पूर्वक लगने वाले स्वयं सेवक भी कम थे और परम्परा के कारण जो आते थे, उनकी संभाल भी बहुत कम थी। यह भी पाया गया कि यद्यपि शासनाविरूढ़ दल ने जिन शहरी शिक्षक वर्ग के लोगों सरकारी कर्मचारियों, व्यापारियों, शिक्षकों, एवं विद्यार्थियों को लाभ भी पहुंचाया, वे उनसे लाभ भी प्राप्त करते थे और प्रायः असन्तोष तथा रोष प्रकट करते पाये गए। राजस्थान-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का एक समूह झुंझनूं के साम्यवादी दल के एक उम्मीदवार के पक्ष में काम करने गया और इसका स्वागत उस क्षेत्र के विद्यार्थियों ने आमतौर पर किया। झुंझनूं में साम्यवादियों की सभा के अवसर पर पुलिस द्वारा जुलूस पर डंडे चलाये गये और कहा जाता है कि विद्यार्थियों पर मार पड़ी और वे गिरफ्तार किये गये। इस सबसे भी शहरी जनता के कांग्रेस विरोधी रुख को बल मिला।

ग्रामीण तथा अशिक्षित वर्ग में चुनाव के उद्देश्य आदि के बारे में सही जानकारी का प्रायः अभाव पाया जाता था, पर आम चुनाव के बारे में प्रायः सब जगह दिलचस्पी थी। उनमें आम चर्चा जाति तथा धर्म के आधार पर अधिक पाई गई। बहुतों को यह आम चुनाव भार मालूम देता था जिसे जैसे-तैसे उतार फैंकना हो, यद्यपि दबाव के कारण, चाहे वह पैसों का हो, चाहे प्रभाव का, मतदान प्रायः बहुत बड़ी संख्या में हुआ। कुछ समझदार लोगों को पैसे के इस नंगे नाच से नाराजगी भी होती थी। खास कर जहां सम्पत्तिधारी लोग चुनाव-अखाड़े में थे, वहां आम चुनाव को चुनाव न मान कर क्रय-विक्रय का बाजार माना गया और जहां अधिक लाभ मिला उधर की तरफ ही लोग झुक गये। 'नोट वहां वोट' की कुत्सित प्रवृत्ति का खासकर उन क्षेत्रों में जहां धन की पूजा पहिले से ही मुख्य है और जहां के लोग बड़े पैमाने पर व्यापार, उद्योग के लिए बाहर बड़े शहरों में गये हैं वहां तो प्राबल्य ही रहा।

---

[११]

आम-चुनाव के नतीजे

चौथे आम-चुनाव में राज्य विधानसभा के १८४ स्थानों के लिये कुल मिलाकर ८९१ उम्मीदवार चुनाव मैदान में आये और लोक सभा के लिये कुल ११६ उम्मीदवार खड़े हुये थे।

चुनाव के बाद विधान सभा और लोक सभा में सफल उम्मीदवारों की दलीय स्थिति इस प्रकार रही:—

	विधान सभा	लोकसभा
कुलस्थान	१८४	२३
कांग्रेस	८९	१०
स्वतंत्र	४९	८
जनसंघ	२२	३
संयुक्त समाजवादी	८	—
कम्युनिस्ट (दक्षिण)	१	—
कम्युनिस्ट (वाम)	—	—
प्रजासमाजवादी	—	—
निर्दलीय	१५	२

विधान सभा—विधान सभा के लिये श्री दामोदरलाल व्यास मालपुरा से तथा टोंक से, दोनों चुनाव क्षेत्रों से विजयी हुये। अतः १८४ स्थानों के लिये विधान सभा के सदस्यों की संख्या १८३ ही रही। इस प्रकार कांग्रेस के ८८ सदस्यों के मुकाबले में अन्य दल तथा निर्दलीय सदस्यों की संख्या ९५ रही। स्पष्टतः ही विधान सभा में संतुलन १५ निर्दलीय सदस्यों के हाथ रहा।

चुनाव के कुछ नतीजे विस्मयकारी रहे। मालपुरा से महारानी गायत्री देवी चुनाव हार गई। लाडनूं से रामनिवास मिर्धा सफल नहीं हो पाये। मेड़ता से नाथूराम मिर्धा नाटकीय स्थिति में हारे—वे सफल हो रहे थे पर दो बार पुनर्गणना के बाद अंतिम रूप से उनकी हार हो गई। घैराठ से कमला बेनीवाल भी सफल नहीं हो पाई। झुन्झनूं जिले में विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष पं० नरोत्तमदास जोशी भी असफल रहे। चोमूं जिला जयपुर से प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष श्री रामकिशोर व्यास भी विजयी नहीं हो पाये। दूसरी ओर

डीडवाना से श्री मथुरादास माथुर विजयी हुये और नसीराबाद से श्री बालकृष्ण कौल हार गये। मांडलगढ़ से राजस्थान में नशाबंदी आंदोलन के प्रमुख कार्यकर्ता श्री मनोहरसिंह मेहता की जीत हुई और पुराने कांग्रेसी विधायक श्री गणपतलाल वर्मा को हार जाना पड़ा।

श्री मनोहरसिंह मेहता को मांडलगढ़ के मतदाता संघ ने अपनी ओर से प्रत्याशी बनाने का सर्वसम्मत निर्णय बीगोद में त्रिवेणी के संगम पर किया और उनके चुनाव के लिये खर्च की रकम जुटाने की जिम्मेदारी उठाई। लगभग एक हजार व्यक्ति अपने कन्धों पर रोटी बांध कर चुनाव प्रचार में गांव-गांव में व्यवस्थित रूप से गये और मजदूर से पचास पैसे से लेकर सम्पन्न लोगों से एक हजार तक चन्दे के रूप में एकत्रित किये। उधर कांग्रेसी प्रत्याशी के चुनाव प्रचार में कांग्रेस-संगठन और मंत्रियों आदि ने पूरा प्रयत्न किया। बिजली की लाइन भी भीलवाड़ा से बिजोलिया तक खेंची गई, टीन की चद्दरें, तकावी तथा ऋण भी मुक्त हस्त से दिये गये। पर कड़े मुकाबले के बाद आठ हजार मत से मतदाता संघ के उम्मीदवार को सफलता प्राप्त हुई।

राजस्थान में मतदाताओं की संख्या १ करोड़ २२ लाख है। कुल मतदान ७० लाख ९३ हजार हुआ। इनमें ३ लाख ५४ हजार मत खारिज हो गये। स्वीकृत ६७ लाख ४६ हजार रहे। विभिन्न दलों को जो मत प्राप्त हुये उनका विवरण इस प्रकार है:—

दल	**मत प्राप्त**	**प्रतिशत**
कांग्रेस	२७ लाख ९६ हजार	४१.४४
स्वतंत्र	२७ लाख १५ हजार	२२.४५
जनसंघ	७ लाख ८३ हजार	११.६१
संसोपा	३ लाख २१ हजार	४.७६
साम्यवादी (वा०)	७७ हजार	१.१५
साम्यवादी (द०)	६४ हजार	०.९५
प्रजासमाजवादी	५४ हजार	०.८१
रिपब्लिकन	१० हजार	०.१६
निर्दलीय	११ लाख २४ हजार	१६.६६

इन चुनावों में ४८० उम्मीदवारों की जमानत जब्त हुई। इनमें २७९ निर्दलीय थे। सभी प्रजासमाजवादी, रिपब्लिकन उम्मीदवारों की जमानतें

जब्त हुई। वामपंथी साम्यवादियों में २० में से ४ और दक्षिणपंथी साम्यवादियों में २१ में से ३ ही जमानत बचा पाये। कांग्रेस दल के ४, स्वतंत्र दल के १६, जनसंघ के ११ और संसोपा के १७ प्रत्याशियों ने जमानतें खोई।

लोकसभा—राजस्थान से लोकसभा के सदस्यों में भी कांग्रेस का अनुपात कम हुआ है। गये आम चुनाव में कांग्रेस को २२ में से १४ स्थान प्राप्त हुये थे। अबकी बार उसे २३ में से १० ही प्राप्त हुये। स्वतंत्र दल को ४ की बजाय ८ और जनसंघ को १ के बजाय ३ स्थान मिले। निर्दलीय ३ की जगह २ ही रह गये।

कांग्रेस के ४ पुराने सदस्य चुनाव हार गये, इनमें केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्री श्री राजबहादुर, लोक लेखा समिति के अध्यक्ष श्री राधेश्याम मुरारका और प्रशासनिक सुधार आयोग के सदस्य श्री हरिश्चन्द्र माथुर हैं। लोकसभा के वरिष्ठ तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण सदस्यों में से डा० लक्ष्मीमल सिंघवी कांग्रेस दलीय उद्योगपति श्री नरेन्द्रकुमार सांघी से हारे। अलवर के अन्य निर्दलीय संसद-सदस्य श्री लाला काशीराम वहीं के कांग्रेस प्रत्याशी मास्टर भोलानाथ से हारे। निर्दलीय बीकानेर के महाराजा करणीसिंह पुनः निर्वाचित हुये। स्वतंत्र दल की ओर से महारानी गायत्री देवी भी पुनः निर्वाचित हो गई। निर्दलीय महाराजा बृजेन्द्रसिंह भरतपुर से जीते और महाराज कुमार ब्रजराजसिंह झालावाड़ से। इस प्रकार राजघराने के चार सदस्य—सभी विरोधी दलों से जीत कर लोक सभा में पहुंचे।

सात उद्योगपतियों में श्री नरेन्द्रकुमार सांघी के अलावा बाकी सब—श्री चरणजीत राय, श्री राधाकृष्ण बिरला, श्री देवकीनंदन पाटोदिया, श्री नन्दकुमार सोमाणी, श्री सुरेन्द्रकुमार तापड़िया और श्री गोपाल साबू—स्वतंत्र दल के हैं।

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि इस आम चुनाव में भी पिछले आम चुनाव की भांति कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में प्रकट हुई, पर यह स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी। पर यह भी कह सकते हैं कि कुल मिला कर कांग्रेस को स्थानों के लिहाज से भी और मतों के लिहाज से भी जनता के स्पष्ट समर्थन का अभाव रहा और बाकी सब मिल कर कांग्रेस को अल्प मत में ला सकते हैं। यद्यपि यह कहना और भी सच होगा कि राजस्थान में अन्य दलों की खासकर स्वतंत्र और जनसंघ की शक्ति बढ़ी अवश्य, पर उनको भी शासन करने का स्पष्ट बहुमत मिल गया, यह तो हुआ ही नहीं। इसे इस प्रकार भी

कहा जा सकता है कि यद्यपि जनता ने कांग्रेस के प्रति अपनी नाराजगी तो प्रकट की, पर अपना विश्वास किसी भी राजनैतिक दल को प्रदान नहीं किया। अनिश्चितता की परिस्थिति इन आम चुनावों के परिणामों को प्रकट करती है।

मतदान के पूर्व राजस्थान में स्वतंत्र तथा जनसंघ में जिस प्रकार समझौता हो गया था, उनमें वाद में जनता पार्टी ने शामिल होना चाहा, पर वे वहुत विलम्व से मैदान में आये, इसलिये वे साझेदारी में शामिल नहीं हो पाये, केवल सहयोगी रहे। उनके कुछ उम्मीदवार इनके चिन्हों पर लड़े और कुछ निर्दलीय के रूप में। ऐसा प्रतीत होता है कि पन्द्रह निर्दलीय में से वारह जनता पार्टी के थे। इन सव ने मिल कर संयुक्त समाजवादी पार्टी के साथ संयुक्त दल की स्थापना की और ६२ की संख्या वना कर वहुमत की घोषणा की। उधर कांग्रेस ने तीन निर्दलीय और स्वतंत्र दल के विधायक को अपनी ओर मिलाकर ६२ के वहुमत को अपना वताया। इस प्रकार के नाजुक संतुलन ने स्वाभाविक तौर से दोनों ओर के कच्चे विधायकों और निर्दलीय सदस्यों पर डाले जाने वाले दवाव को वहुत अधिक वढ़ा दिया और राज्य में अनिश्चितता की स्थिति पैदा कर दी। ऐसा प्रतीत होता है कि अगले पांच साल तक अथवा वीच में दुवारा आम चुनाव होकर स्थिति अधिक स्पष्ट न हो जाय तव तक राजस्थान की राजनीति को इसी प्रकार की अस्थिर स्थिति में रहना पड़ेगा, जो स्थिर और दृढ़ शासन की दृष्टि से अवांछनीय और हानिकारक प्रतीत होती है। दो स्पष्ट तथा प्रवल राजनैतिक दलों के अभाव में संसदीय लोकतंत्र किस प्रकार से तमाशा होकर स्थायी चिन्ता का विषय जनता के लिये वन सकता है, इसका यह ज्वलंत उदाहरण है। इसके लिये दोषी कौन है—यह कहना चाहे कठिन हो पर इसका दुष्परिणाम सारे समाज के सभी वर्गों तथा अंगों को भुगतना पड़ेगा—इसमें संदेह नहीं। यह स्थिति संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली के आगे एक व्यापक प्रश्न-चिन्ह लगा देती है।

भाग-[२]

कुछ सामान्य विवेचन

पद्धति में सुधार की आवश्यकता—आम-चुनावों ने आम जनता में गहरी रुचि पैदा की और वे महीनों तक रात-दिन लोगों में चर्चा के विषय बने रहे। यद्यपि राजनैतिक दलों की विचार-धाराओं तथा देश और राज्य की स्थिति तथा समस्याओं के बारे में लोगों की जानकारी आम तौर पर कम, अधूरी और प्रायः भ्रमपूर्ण थी, पर यह विचार प्रायः सभी स्तरों पर पाया गया कि आम चुनाव के तरीके दोषपूर्ण हैं, इनमें सत्ता तथा साधन वालों के जीतने के ही अधिक अवसर हैं। राजनैतिक दलों के बारे में लोगों की राय भिन्न-भिन्न है, कुछ लोग एक दल और कुछ लोग दूसरे दल को अच्छा या बुरा बतलाते हैं। कुछ लोग जरूर ऐसे हैं जो दलबंदी की पद्धति को ही ठीक नहीं मानते। जब कुछ जानकार लोग दलबंदी के कारण होने वाले पक्षपात, भ्रष्टाचार आदि की चर्चा करते हैं तो आम जनता जरूर उनसे सहमत होती है। पर दल न रहे तो शासन चल सकेगा क्या—यह विचार खास कर पढ़े-लिखे लोगों में भी स्पष्ट नहीं है। आधुनिक लोकतंत्र में—और उससे उनका आशय इसी संसदीय लोकतंत्र से है जो इस देश में चालू है—दलों का होना अनिवार्य है और उनमें संघर्ष भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में राजनैतिक दलों को आवश्यक बुराई मानकर चलना वे प्रायः व्यवहारिक और उचित मानते हैं। सामान्यतः व्यवहारिक और उचित में भेद भी न अच्छे पढ़े लिखे लोग ही प्रायः कर पाते हैं और न अशिक्षित या अल्प शिक्षित आम जनता ही।

राजस्थान समग्र सेवा संघ की ओर से इस अवसर पर सर्वदलीय सरकार का विचार आम जनता तथा विभिन्न दलों के नेताओं के सामने रखा गया। प्रायः सभी जगह यह विचार अच्छा तो माना गया पर व्यवहारिक नहीं। दिल्ली में निर्दलीय लोकतांत्रिक सम्मेलन भी गत दिसम्बर मास में हुआ। उसमें राजस्थान के कुछ प्रतिनिधि शामिल हुये। इसमें श्री जयप्रकाश नारायण ने केन्द्र में मिली जुली सरकार बनाने पर जोर दिया। राजस्थान में भी इसी प्रकार के सम्मेलन के आयोजन का प्रयत्न किया गया। इसका भी कुछ लोगों ने उत्साह पूर्वक स्वागत किया, पर कुल मिला कर यह प्रतीत हुआ कि लोगों में

सर्वदलीय, निर्दलीय या पक्षमुक्त राजनीति के संबंध में जानने और सोचने की तो रुचि है, पर उसे व्यवहारिक मानने या उसके लिये व्यवहारिक प्रयत्न करने की भावना आमतौर पर कम है, खासकर राजनैतिक दलों से संबंधित महत्त्वपूर्ण लोगों में। पर फिर भी इस विचार को व्यापक रूप से प्रसारित किया जाय, इसका विवेचन उच्च शिक्षण संस्थाओं तथा विचार गोष्ठियों द्वारा हो और इस पर पत्रों तथा सभा-सम्मेलनों में चर्चा की जाय तो इस पर आम जनता अधिक सोचने को अनुकूल हो सकती है।

चुनाव का खर्चीलापन—यह विचार आमतौर पर व्यक्त किया गया कि ये आम-चुनाव बहुत ही खर्चीले हैं। सामान्य स्थिति का व्यक्ति कितना ही योग्य तथा सेवा-भावी हो आम चुनाव में उम्मीदवार होने का विचार ही नहीं कर सकता। जो या तो स्वयं सम्पन्न हैं या जो संपन्न लोगों से सीधी सहायता प्राप्त कर सकता है या जिसे सम्पन्न राजनैतिक दल का समर्थन प्राप्त है वही सामान्यतः खड़ा हो सकता है। पर इसके अपवाद भी हैं। कुछ दलों के उम्मीदवार व कुछ निर्दलीय उम्मीदवार जिनके आर्थिक साधन बहुत अल्प हैं और जिन्हें उनकी विचारधारा के कारण अधिक सम्पन्न लोगों की सहायता मिल भी नहीं सकती, ऐसे लोग भी चुनाव में खड़े होते हैं और कुछ जीतते भी हैं, पर उनकी संख्या अत्यल्प है। ऐसे लोगों के हारने का अनुपात भी बहुत भारी है। राजस्थान में संयुक्त समाजवादी दल, साम्यवादी, प्रजा समाजवादी, रिपब्लिकन तथा निर्दलीय कुल मिलाकर ५४० उम्मीदवार खड़े हुये और इनमें कुल पच्चीस उम्मीदवार ही सफल हुये।

इस बार आम चुनाव में खर्च गत आम चुनाव के मुकाबिले कई गुना बढ़ गया। इसके निम्न लिखित कारण मालूम होते हैं—(क) रुपये का अवमूल्यन (ख) मंहगाई, (ग) चुनाव के लिये प्रचार तथा संगठनात्मक साधन अधिक व्यापक अधिक सघन और खर्चीले हो गये। (घ) प्रचारक से लेकर मतदाता तक सभी में अर्थलिप्सा की वृद्धि हुई।

आम चुनाव कम खर्चीले हों, यह विचार तो सभी चिन्तनशील लोगों ने प्रकट किया, लेकिन यह कैसे हो सकता है या हो भी सकता है क्या, इसके बारे में आमतौर पर संदेह प्रकट किया गया। चुनाव के कानून में संशोधन किया जाय, यह विचार भी व्यक्त हुआ, पर यह अविश्वास भी आमतौर पर प्रकट हुआ कि कानून कुछ भी बने, सत्ता और सम्पत्ति के आधार पर उसका पालन कम और उल्लंघन ही अधिक होगा। दूषित मनोवृत्ति की व्यापकता के

कारण कोई कानून या सुधार चल पायेगा, इसी में लोगों को संदेह लगता है। एक सुझाव यह भी आया कि चुनाव में मोटरों व जीपों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया जाय। यह भी कहा गया कि मतदान से पन्द्रह दिन पहिले प्रचार बंद कर दिया जाय।

यह विचार भी व्यक्त किया गया कि खर्च की सीमा के लिये नियम बहुत कड़े हों। इस सम्बन्ध में एक जांच कमीशन की नियुक्ति का सुझाव भी दिया गया जो स्वयं उम्मीदवारों के क्षेत्रों पर जाकर उम्मीदवारों के साधनों तथा खर्च के बारे में जांच करे और जहां अवहेलना पाई जाय वहां उम्मीदवार को तुरन्त चुनाव के अयोग्य घोषित किया जाय तथा कठोर दंड की व्यवस्था रहे। इस सम्बन्ध में सपरिश्रम कारावास का सुझाव भी दिया गया है। यह भी कहा गया है कि चुनाव व्यय में सब प्रकार का व्यय—उम्मीदवार का व्यक्तिगत खर्च, पार्टी की सहायता और समर्थकों की मदद, सब शामिल होना चाहिये। यह सुझाव भी दिया गया कि लोकसभा में व्यय की अधिकतम मर्यादा पांच हजार और विधान सभा में दो हजार रहे और चुनाव कानून में भी इसी आशय के परिवर्तन किये जांय। इस पर भी जोर दिया गया कि चुनाव सम्बन्धी सरकारी नियम लचीले, अस्पष्ट या बच निकलने जैसे नहीं होने चाहियें।

चुनाव में निष्पक्षता—चुनाव में निष्पक्षता लाने के सम्बन्ध में कहा गया कि सरकारी कर्मचारियों को चुनाव में पूर्णतया निष्पक्ष रहने की हिदायत रहे। किसी भी प्रकार के सरकारी या सार्वजनिक पद पर स्थित व्यक्ति को चुनाव में खड़े होने की इजाजत न दी जाय। इसी सम्बन्ध में यह सुझाव भी रखा गया कि आम चुनाव के दो महीने पूर्व मंत्री-मंडल को त्याग-पत्र देना चाहिये और नये मंत्री-मण्डल की नियुक्ति चुनाव के तुरन्त बाद हो जानी चाहिए। इस अवधि में राज्यपाल शासन चलाये। यह भी सुझाया गया कि राज्यपाल राजनैतिक व्यक्ति न होकर प्रशासनिक अनुभव का व्यक्ति हो तो अधिक अच्छा रहेगा।

वर्तमान संविधान में तथा पंचायती राज्य की संस्थाओं में सभी जगह सामान्य बहुमत ही मान्य है। सर्व-सम्मति तथा सर्वानुमति की बात लोगों को आकर्षक तथा उचित तो लगती है, पर आज की अनेक प्रकार की व्यापक विभिन्नताओं और रस्साकशी के बीच उसकी व्यवहारिकता में आमतौर पर संदेह प्रकट किया जाता है और जब सर्वसम्मति से उतर कर लगभग सर्वानुमति की बात कही जाती है तो ७५ या ८० प्रतिशत से फिर बहुमत में आ जाने में

अधिक कठिनाई नहीं होती और उसमें अन्तर आमतौर पर लोगों को नहीं लगता। इसमें तो सर्वानुमति या कन्सैन्सस की वात लोगों को अधिक समझ में आती है। लेकिन विभिन्न स्वार्थों के टकराव जब प्रवल हों तथा सत्ता का केन्द्रीयकरण जहां जवरदस्त हो, वहां तव तक एक मत होना और भी कठिन लगता है, जव तक प्रवल नैतिकता का दवाव या महान संकट की घड़ी देश या समाज के सामने नहीं हो।

वर्तमान आम-चुनाव के परिणाम स्वरूप राजस्थान में स्पष्ट वहुमत के अभाव में या उसकी स्पष्ट जांच किए विना ही, अल्प मत को सरकार वनाने का मौका देना वहुत से लोगों की राय में वहुमत के निर्णय का अपमान माना गया। राजस्थान में निर्दलीय लोगों की निर्णायक स्थिति के कारण वहुमत की स्पष्टता नहीं आ सकी, इसलिए वहुत से लोगों की यह राय भी वनी कि निर्दलीय लोगों को चुनाव लड़ने की इजाजत नहीं देनी चाहिये और कुछ लोग इस राय के भी हुए कि इस परिस्थिति में सर्वदलीय सरकार ही राजस्थान में उचित होगी जिसमें सभी विजयी दलों के नेता शामिल हों।

उम्मीदवारों की योग्यता संवंधी कानून में भी परिवर्तन की मांग की गई। उम्मीदवार की शैक्षणिक योग्यता ऊंची रखी जाय, क्षेत्र में निवास और सेवा संवंधी भी कोई योग्यता रखी जाय। यह भी कहा गया कि ७५ प्रतिशत मत प्राप्त करने वाला ही सफल माना जाय, यद्यपि इसके न प्राप्त होने पर जो संभावित परिणाम होंगे उनका निवारण किस प्रकार से हो इस पर विचार करने की तैयारी नहीं पाई गई।

प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष चुनाव—चुनाव प्रत्यक्ष हों या परोक्ष—इसके संवंध में दोनों प्रकार की राय प्रकट की गई। एक ओर व्यक्त किया गया कि प्रादेशिक और केन्द्रीय स्तर पर चुनाव अप्रत्यक्ष होना ही उचित होगा। यदि ऐसा नहीं हो तो उम्मीदवार मतदाता मंडलों द्वारा तय किये जांय, दलों द्वारा नहीं। दल अपने उद्देश्य तथा कार्यक्रमों से जनता को शिक्षित करें। लेकिन यह प्रश्न वाकी ही रह गया कि दल अपने उम्मीदवार खड़े न करे तो दल के कार्यक्रम की पूर्ति की जिम्मेदारी कौन और कैसे लेगा ?

इस पर यह विचार भी व्यक्त किया गया कि चुनाव के लिये प्रत्यक्ष प्रणाली ही उचित है। व्यय चाहे कुछ अधिक हो, पर शासन चलाने वाला व्यक्ति सीधा जनता के द्वारा ही चुना जाना चाहिये। परोक्ष चुनाव में जनता की सीधी राय नहीं रहती अतः चुना हुआ व्यक्ति आम जनता के प्रति अपनी

सीधी जिम्मेदारी महसूस नहीं करता। यह विचार भी प्रकट किया गया कि परोक्ष चुनाव में थोड़े लोगों को भ्रष्ट करना अधिक सरल होगा, अतः व्यापक और प्रत्यक्ष मतदान से जनमत अधिक सही रूप से प्रकट हो सकता है।

चुनाव क्षेत्रों की मर्यादा—यह विचार भी सभी ओर से व्यक्त हुआ कि चुनाव क्षेत्रों को और सीमित किया जाय, क्योंकि छोटे क्षेत्रों में प्रचार भी अधिक और संपर्क भी अधिक सीधा और गहरा हो सकता है। पर विधान सभाओं या लोकसभा में अधिक सदस्य जाने पर वहां के काम काज में कठिनाई आयेगी, उसका विचार इसमें संभवतः नहीं किया गया।

तीसरे तथा चौथे आम चुनावों का तुलनात्मक सर्वेक्षण—तीसरे तथा चौथे आम चुनाव के तुलनात्मक सर्वेक्षण के प्रसंग में हमें सबसे पहिले घटनाओं पर विचार करना होगा जो गत पांच वर्षों से राष्ट्रीय स्तर पर हुई हैं, क्योंकि उन्होंने ही जन मानस को इतना अधिक क्षुब्ध कर दिया जिसके कारण देश भर में कांग्रेस-विरोधी हवा तेजी के साथ चल पड़ी। योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए वित्तीय साधनों की उपलब्धि के लिये जहां कर दाता की पीठ पर करों का बोझा बढ़ता चला गया वहां दूसरी ओर अनिवार्य वस्तुओं के भाव भी निरंतर बढ़ते चले गये। इधर खेतों तथा कारखानों में उत्पादन की कमी के कारण भी चीजों के भाव बढ़े ही, साथ ही उनकी सुलभता की स्थिति भी समाप्त होती चली गई। ऊंचे भावों पर भी चीजों का मिलना कठिन होता चला गया। यद्यपि इन सभी बातों के लिये प्राकृतिक परिस्थितियां भी एक हद तक जिम्मेदार रहीं, परन्तु इन सभी बातों के लिये जनता ने सरकार तथा सत्तारूढ़ दल कांग्रेस को ही जिम्मेदार मानना शुरू किया और इस सब का परिणाम यह रहा कि चौथे आम चुनाव में कांग्रेस-विरोध तीसरे आम-चुनाव की तुलना में कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा रहा।

सत्तारूढ़ दल के प्रति विरोध-भावना—यद्यपि चौथे आम चुनावों के दौरान मतदाता संबंधी आंकड़ों का पूरा ब्यौरा तो हमारे सामने नहीं है पर सत्तारूढ़ दल के प्रति विरोध भावना के कारण भी सभी जगह मतदाता अपेक्षाकृत अधिक संख्या में मत डालने को प्रेरित हुये। सभी क्षेत्रों में मतदान के प्रति आमतौर पर अच्छा उत्साह दिखाई दिया है। उम्मीदवारों तथा आम जनता के बीच की दूरी भी अपेक्षाकृत कम हुई है। जहां सरकारी अधिकारियों के रवैये तथा कार्यकुशलता का प्रश्न है, यह कहना कठिन है कि पांच वर्ष के

बाद भी उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन हुआ है अथवा नहीं। इसका एक कारण यह भी है कि चाहे किसी भी पक्ष की सरकार बने, उनकी स्थिति में किसी भी प्रकार का अंतर आने वाला नहीं है। ऐसा मानकर चलने के कारण चुनावों के प्रति सरकारी कर्मचारियों के रुख में आमतौर पर कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं दिया है। पर फिर भी ऐसे उदाहरण सुनने में आये जिनमें कुछ अधिकारियों ने एक राजनैतिक दल—खासकर सत्तारूढ दल की ओर अपना सम्मान प्रकट किया तो कुछ ने स्वतंत्र दल व जनसंघ के प्रति अपना झुकाव दिखाया।

चुनाव के खर्चे में कमी अथवा वृद्धि का जहां तक ताल्लुक है इसमें कमी का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि सभी चीजों के भावों की गत पांच वर्षों में वृद्धि हुई है, यहां तक कि भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी की दरें भी बढ़ी हुई सुनने में आई हैं। परन्तु इस बार विपक्षी दलों के गठबंधन के कारण चुनाव दंगल में भाग लेने वाले विरोधी दलों के उम्मीदवार अपनी जीत के बारे में अधिक आश्वस्त नजर आते थे। वैसे कहने को तो ऐसे निर्दलीय उम्मीदवार भी जिनकी जमानतें जब्त होने तक में उनके सिवाय शायद ही किसी को शक हो, अपनी जीत की डींग हाकने से बाज़ नहीं आते थे। आम चुनाव में असत्य का जैसा व्यापक, व्यवस्थित और जाना-बूझा व्यवहार होता है, उसका दूसरा उदाहरण शायद ही मिल सके। पर जिन क्षेत्रों में कुछ जाने-माने असाधारण उम्मीदवार चुनाव लड़ रहे थे उनमें किए जाने वाले चुनाव के खर्चे के आंकड़े इस जमाने में भी चौंका देने वाले माने जायेंगे। यद्यपि उनके खर्चे का सही अनुमान लगाना तो आसान नहीं है पर इतना अवश्य है कि उनके खर्चे की सीमा हजारों तक ही सीमित न रहकर लाखों तक पहुँच गई है—यह बात सभी मंजूर करेंगे। चौथे आम चुनाव की यह अपनी विशेषता ही मानी जायेगी।

चुनाव प्रचार के दौरान बोलने तथा प्रकाशन के मामलों में स्तर संबंधी मर्यादाओं का पालन किस सीमा तक किया गया इसका विस्तृत उल्लेख तो चुनाव सम्बन्धी प्रकरण में किया जा चुका है, पर इस दृष्टि से पांच वर्षों में किसी प्रकार का परिवर्तन आया हो ऐसा नहीं लगता। आम लोगों में चुनाव के प्रचार के तौर-तरीके तथा वृत्तियां जैसी की तैसी रही हैं—उनमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आया है। इतना अवश्य है कि कुछ दल पहिले से अधिक संगठित और अधिक क्षमतावान बन गए हैं तो कुछ दल कमजोर भी हुए हैं।

समाचार-पत्रों का रुख—राज्य के दैनिक समाचार पत्रों में अबकी बार कांग्रेस विरोधी रुख साफ दिखाई देता था, इसके कारण चाहे जो भी रहे हों। कांग्रेस को इस बार अपदस्थ करने का वातावरण बनाने में अखबारों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। बड़े से बड़े समाचार पत्रों में भी एक या दूसरे दल का तथा कुछ विशेष चुनाव क्षेत्रों में इस या उस विशिष्ट उम्मीदवार का समर्थन या विरोध करने में जैसा सातत्य और कौशल प्रकट किया गया, वह शीत-युद्ध और पक्षपात का बहुत स्पष्ट और अध्ययन करने योग्य विषय है।

मतदान के लिए निर्णय का आधार—सामान्य मतदाता अपना मत देने से पूर्व तत्सम्बन्धी निर्णय लेते समय किन किन बातों से प्रभावित होता है—यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है इसे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। यह कहना ही होगा कि हमारे देश के करोड़ों मतदाताओं का काफी बड़ा हिस्सा अशिक्षित है। इस कारण इस वर्ग से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह विभिन्न दलों के आदर्शों, राजनीति तथा सिद्धान्तों का विवेचनात्मक विश्लेषण करने की स्थिति में हो। जब तक उसमें इसके लिए योग्यता और क्षमता पैदा न हो सके तब तक सामान्य भारतीय मतदाता से यह उम्मीद करना कि वह दल के आदर्शों के आधार पर उम्मीदवारों के सम्बन्ध में निर्णय कर सकेगा, उचित नहीं माना जा सकता। इस स्तर की योग्यता के लिए मतदाताओं का साक्षर हो जाना ही (यद्यपि अभी तो करोड़ों मतदाता साक्षर भी नहीं हैं) काफी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि उनका सामान्य ज्ञान इतना परिपक्व हो कि वे विभिन्न राजनैतिक दलों की विचारधाराओं के अन्तर और महत्व को समझ सकें और उनके कार्य से विचारों की व्यवहारिता को नाप सकें।

इसी पृष्ठ-भूमि में तभी यह प्रश्न उठता है कि आज जबकि देश में लगभग ६०–७० प्रतिशत मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं, सामान्य मतदाता सोच-समझ कर मत देता है अथवा केवल बोझा उतारने की दृष्टि से ही अपनी जिम्मेदारी पूरी करता है? चुनाव और मतदान के दौरान जन-मानस के इस दृष्टि से किए गए अध्ययन से सहज ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि मतदान के सम्बन्ध में मतदाता ने सामान्यतः उन्हीं बातों से प्रभावित होकर अपना फैसला किया है जो उम्मीदवार की योग्यता और क्षमता के सम्बन्ध में सही निर्णय लेने में सहायक नहीं मानी जा सकती है। उन सभी तथ्यों पर हम आगे एक एक कर विचार करें तो अधिक सही होगा।

स्थानीय प्रमुख लोगों का प्रभाव—हमारे देश में केवल कुछ अपवादों को छोड़कर सभी निर्वाचित प्रतिनिधियों के बारे में यह धारणा बनी हुई है और जिसे निराधार भी नहीं माना जा सकता, कि सभी निर्वाचित होने वाले लोग पांच वर्ष में एक बार तो अपने क्षेत्र के गांव गांव में चक्कर लगाते हैं, गांव वालों के हमदर्द होने का ढिंढोरा पीटते हैं, उनके दुख दर्द दूर करने के लम्बे चौड़े वादे करते हैं, उनकी शिकवा–शिकायतों को ध्यान पूर्वक सुनते हैं, पर चुने जाने के बाद गांव और मतदाताओं के पास जाना तो दूर रहा, मौके बे मौके जब कोई मतदाता इन निर्वाचित प्रतिनिधियों तक स्वयं पहुंचते हैं तब भी उनकी बात नहीं सुनते। जहां निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा मतदाताओं के पारस्परिक सम्बन्धों और आपसी विश्वास की यह स्थिति हो, वहां यह सोचना कि मतदाता अपने उम्मीदवार के सम्बन्ध में गुणावगुण की दृष्टि से निर्णय करता होगा, उचित नहीं माना जा सकता। असल में सामान्य मतदाता उन व्यक्तियों से प्रभावित होकर ही इस सम्बन्ध में अपना निर्णय करता है जो चुनाव प्रचार के सिलसिले में अमुक उम्मीदवार का पक्ष लेकर उस तक पहुंचते हैं। सामान्यतः उम्मीदवार आम मतदाता तक पहुंचने के लिए उन लोगों को अपना माध्यम बनाते हैं जिनका सम्बन्वित क्षेत्र में स्थानीयता के कारण अपना प्रभाव होता है। यह लोग मतदाताओं को जिस हद तक प्रभावित कर पाते हैं, उतनी सीमा तक अमुक उम्मीदवार की जीत की संभावनायें उस क्षेत्र में बनती जाती हैं।

दलीय आदर्श—जहां तक दल विशेष की प्रतिष्ठा और राजनीति सम्बन्धी तथ्यों द्वारा इस क्षेत्र में प्रभाव डालने का ताल्लुक है, यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि देश की वर्तमान समाज व्यवस्था में बहुत बड़ा परिवर्तन होने, मतदाताओं में व्यापक राजनैतिक चेतना पनपने तथा गुणावगुण की दृष्टि से निर्णय लेने लायक बौद्धिक परिपक्वता होने तक हमें इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी। दलीय आदर्शों तथा सिद्धान्तों के आधार पर मतदाताओं द्वारा उम्मीदवारों के सम्बन्ध में निर्णय लेने का प्रतिशत इतना कम है कि उसे नगण्य की ही संज्ञा दी जाय तो अनुचित नहीं होगा।

उम्मीदवार से लाभ की आशा—यह कहना अनुचित नहीं होगा कि सामान्य मतदाता मत देने से पूर्व यह भी सोचता है कि कौनसा उम्मीदवार उसे किस हद तक लाभ पहुँचा सकता है और इस आधार पर भी वह अपना मत देता है। इस लाभ की परिभाषा अत्यधिक व्यापक है। इसमें एक ओर जहां उम्मीदवार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता शामिल है वहां दूसरी

श्रोर सरकारी विभागों के स्तर पर मतदाताओं के काम निकालने सम्बन्धी उम्मीदवार की क्षमता, मतदाता की स्थानीय समस्याओं को हल करने में संभावित योगदान, आदि सभी शामिल हैं। किन्तु इन सबसे अधिक जो बात बिना पढ़े-लिखे मतदाताओं के गले उतरती है वह है उम्मीदवार का सजातीय होना।

उम्मीदवार की सजातीयता—आज यहां की जनता में जातिवादी बन्धन इतने प्रगाढ चले आ रहे हैं कि इनके ढीले होने में अभी बरसों लगेंगे। आज के सामाजिक बन्धनों में परिवार तथा रिश्तेदारी के बाद तीसरा नम्बर जातिगत बन्धनों का ही आता है। यही कारण है कि उम्मीदवारों के चयन में जहां क्षेत्र में अमुक जाति की संख्या को आधार मान कर राजनैतिक दल अपने उम्मीदवार निश्चित करते हैं वहां दूसरी ओर उम्मीदवार भी सम्बन्धित क्षेत्र के मतदाताओं में अमुक जाति के प्रतिशत को ध्यान में रख कर अपने चुनाव क्षेत्र का चयन करते हैं। यह कहावत भी कुछ क्षेत्रों में प्रचलित है कि बेटी और वोट जात वाले के अलावा दूसरे को कैसे दी जा सकती है।

मताधिकार का प्रयोग न करने पर—जो लोग अपने मताधिकार का प्रयोग नहीं करते उन लोगों के बारे में आम लोगों की क्या राय है यह पहलू भी काफी विचारणीय है। लोकतन्त्र में मताधिकार का कितना महत्त्व है यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। पांच वर्ष में एक बार सरकार बनाने का मौका जनता को मिलता है, पर फिर भी देश में जितने लोगों द्वारा मतदान दिया जाता है उसके पीछे इस महत्त्व की कितनी भूमिका है—यह कह पाना कठिन है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में मताधिकार के प्रति जितना महत्त्व मतदाता में होना चाहिए उसे पैदा होने में अभी बरसों लगेंगे। और तो और, कई पढ़े लिखे लोग अपने इस अधिकार का प्रयोग इसलिये नहीं करते क्योंकि वे किसी भी उम्मीदवार को अपनी पसंद का नहीं मानते हैं। पर मत न देने वालों के प्रति समाज में किसी प्रकार की धारणा बनती हो, उसके बारे में कोई विरोध या चर्चा होती हो ऐसा नहीं कहा जा सकता है। ऐसे लोग भी लाखों की संख्या में माने जा सकते हैं जो केवल आलस्य या केवल अन्य कारणों से ही, विरोध के लिए नहीं, अपने मताधिकार का प्रयोग नहीं करते।

संसदीय लोकतंत्र बनाम पंचायती लोकतंत्र—आम चुनाव में होने वाले भारी व्यय, भ्रष्टाचार, पक्षपात आदि के कारण प्रायः लोग संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध अपना मत प्रकट करते हैं जो अप्रत्यक्ष चुनाव, कम व्यय और सरलता

की दृष्टि से विधान सभा और संसद के लिये जिला परिषद के मार्फत विधान सभा के सदस्यों के चुनाव तथा विधान सभाओं के मार्फत संसद के चुनाव को आदर्श और उचित तो स्वीकार करते हैं पर पंचायती राज्य का अनुभव जो इन वर्षों में हुआ और जिस तरह दलबंदी, गुटबंदी, पक्षपात और भ्रष्टाचार राज्य स्तर से बढ़ कर ग्राम स्तर तक पहुँच गया और सार्वजनिक जीवन को जिस प्रकार से उसने दूषित कर दिया, उसे देखते हुये लोग पंचायती लोकतन्त्र का समर्थन करने की हिम्मत नहीं करते, बल्कि लोगों का यह भी कहना है कि पंचायत समिति के प्रधान या जिला परिषद के प्रमुख के उस क्षेत्र से विधान सभा का चुनाव लड़ने पर ही प्रतिबंध होना चाहिये क्योंकि वे प्रायः पंचायत समिति तथा जिला परिषद के भौतिक साधनों का तथा उनके अधीन काम करने वाले कर्मचारियों, शिक्षकों आदि का अपने पक्ष के समर्थन में उपयोग करते हैं। बल्कि यह भी देखा गया कि पंचायत समिति के प्रधान का किसी दल विशेष से संबंधित होना उस क्षेत्र के उस दल के उम्मीदवार की जीत में बड़ा प्रभाव डालता है। अतः पहिले पंचायती राज की संस्थाओं को दलबंदी के आधार पर चुनाव लड़ने से रोका जाय और वहां के सार्वजनिक जीवन को ऊंचा उठाया जाय तब पंचायती लोकतंत्र को राज्यों के स्तर पर ले जाना उचित होगा।

प्रतिनिधित्व किसका—विभिन्न दलों की ओर से विधान सभा तथा संसद के लिये उम्मीदवारों का चयन अंतिम रूप से उनकी केन्द्रीय समिति के द्वारा होता है। ऐसी परिस्थिति में क्षेत्र की दलीय समिति की सिफ़ारिश के अनुकूल या प्रतिकूल भी क्षेत्र से बाहर के लोगों को टिकट दे दिये जाते हैं। चुनाव कानून के अनुसार इसमें कोई रोक भी नहीं है और अखिल भारतीय नागरिकता, अंतर्राज्यकीय निकटता तथा दलीय आवश्यकता की दृष्टि से इस प्रकार क्षेत्र से बाहर के लोगों को टिकट देने में कोई अनौचित्य भी नहीं है, यद्यपि इस प्रकार के उम्मीदवारों की संख्या का अनुपात बहुत ही कम होगा। राजस्थान में विधान सभा तथा संसद दोनों के क्षेत्रों के लिये अनेक दलों की ओर से ऐसे लोग खड़े किये गये। इनके संबंध में यह प्रचार किया गया कि क्षेत्र के बाहर के लोगों का क्षेत्र के लोगों से निकट संबंध नहीं हो सकता, वे उसके हितों की रक्षा नहीं कर सकते, उनका क्षेत्र में अधिक आना जाना नहीं हो सकता; अतः उन्हें नहीं चुना जाना चाहिये। कहीं इस प्रकार के चुनाव प्रचार का विपरीत परिणाम आया, कहीं नहीं भी आया।

यह बात सामान्यतः स्वीकार की जावेगी कि उम्मीदवार को व्यापक हित की दृष्टि से अपनी जिम्मेदारी पूरी करने का प्रयत्न करना चाहिये। विधान सभा का सदस्य पूरे राजस्थान के हित को ध्यान में रखे और संसद का सदस्य पूरे राष्ट्र के हित को, न कि केवल क्षेत्र के संकुचित हित को। फिर भी यह अपेक्षा करना अनुचित नहीं हो सकता कि मतदाताओं द्वारा उनके प्रतिनिधि के रूप में चुना गया व्यक्ति क्षेत्र की सेवा करे, उनकी कठिनाइयों को समझ कर दूर करने का प्रयत्न करे, तथा क्षेत्र के लोगों से निकट सम्पर्क रखे। इसलिये विधान सभा या संसद के सदस्यों को इन दोनों परिस्थितियों में संतुलन करना होगा। उचित यह होगा कि क्षेत्र के लोग अपने प्रतिनिधि से देश के हित में काम करने की अपेक्षा रखें और वह प्रतिनिधि अपने क्षेत्र से सम्पर्क बनाये रखे और अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए जहां तक संभव हो क्षेत्र की गतिविधि का ध्यान रखे और खासकर क्षेत्रीय संकट के समय वहां के लोगों की मदद करने को अवश्य तैयार रहे। उसे दोनों ओर की अपेक्षाओं की पूर्ति करनी होगी।

इसी प्रकार जब कोई भी उम्मीदवार जिस राजनैतिक दल के टिकट पर चुना जाता है, चुनें जाने के बाद उसे नहीं भुलाया जा सकता। जो राजनैतिक, वैचारिक और आर्थिक समर्थन उसे उस दल से मिला है, वह उसे ऐसा करने से रोकेगा, पर दल को तथा उसे, दोनों को राष्ट्र के हित के सामने दल के हित को गौण समझने का प्रयत्न करना होगा। एक दल को छोड़ कर दूसरे दल में शामिल होने की जो प्रवृत्ति केवल सत्ता में हाथ बंटाने या स्वार्थ सिद्धि से की जाती है यह तो अनुचित ही मानी जावेगी। पर जिस दल के टिकट पर कोई उम्मीदवार चुना गया है उस दल को वह किसी भी कारण से छोड़े तो उसे त्यागपत्र देकर चुनाव लड़ना ही चाहिये, यह अनिवार्य नियम या दबाव कहां तक उचित है—यह बहुत निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर सबसे ऊपर तो व्यक्ति की अंतरात्मा की आवाज है। राष्ट्र के सेवक, क्षेत्र के प्रतिनिधि, दल के सहयोगी और विधान सभा अथवा संसद के सदस्य इन चारों जिम्मेदारियों से ऊपर व्यक्ति की अपनी आत्मा है, उसके निर्देश को सावधानी से सुनने और अंत में ठीक लगे तो उसे सर्वोपरि मान्यता देने में ही उसकी मानवता निहित है। अतः इन चारों परिस्थितियों को एक दूसरे के विकल्प में नहीं सोचा जाना चाहिये। पर जब इन हितों में विरोध की स्थिति आवे तो हमारे ख्याल से छोटे हित को बड़े हित के लिये बलिदान कर देना चाहिये, लेकिन अपनी आत्मा की

आवाज़ के आगे सब कुछ गौण हो जाता है। इस विषय में शुक्र नीति का यह श्लोक अच्छा मार्ग दर्शक है :—

त्यजेदेक कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जानपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्॥

राष्ट्रपति के चुनाव का तरीका—इस संबंध में दोनों प्रकार की राय पाई गई। कुछ का कहना यह रहा कि राष्ट्रपति के चुनाव का मौजूदा तरीका ठीक है। सुधार करना हो तो लोकसभा ही उन्हें चुने। दूसरी राय यह प्रकट की गई कि राष्ट्रपति को जनता के सीधे मतदान के द्वारा बहुमत से चुना जाना चाहिये, लेकिन इस संबंध में कोई राय बनाने से पहिले राष्ट्रपति से क्या अपेक्षा है और उसकी क्या जिम्मेदारियां हैं इस पर विचार करना चाहिये और वे संसदीय प्रणाली में क्या हैं तथा अध्यक्षीय प्रणाली में क्या हैं—इसे भी साफ समझ लेना जरूरी है। दूसरी ओर, विभाजित जिम्मेदारी कभी ठीक तरह से निभाई नहीं जा सकती, एक पद या संगठन की पूरी जिम्मेदारी एक पद के प्रति ही हो सकती है, अनेक के प्रति नहीं।

राष्ट्रपति इस देश का सर्वोच्च पद तथा सम्मान है, वह देश की एकता का प्रतीक है और सारे देश की एकता के लिए वह, एक प्रकार से राष्ट्र का साकार रूप और माननीय प्रतिनिधि है।

वह संविधान में सर्वोच्च कार्यकारी अधिकारी—विधायक विभाग, कार्य विभाग, न्याय विभाग, तथा सेना का होते हुये भी वह इन सारे कार्यों को संविधान के नियमों के अनुरूप तथा मंत्री-मंडल की सलाह के अनुसार ही करता है, और मंत्री-मंडल का गठन सीधा जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों के द्वारा होता है, अतः भारतीय राष्ट्रपति अमेरिकन राष्ट्रपति की तरह वास्तविक कार्यकारी अधिकारी नहीं है। इस परिस्थिति में उसका राष्ट्र की सर्व सामान्य जनता के सीधे मतदान से चुनाव उचित नहीं होगा। यदि ऐसा किया गया तो मंत्री-मंडल में तथा उसमें संघर्ष और मतभेद होने की संभावना है और उस स्थिति में मंत्रि-मंडल संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं रह सकता, उसे राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी रहना पड़ेगा।

इसलिये भारतीय लोकतंत्र में राष्ट्रपति राष्ट्रीय अलंकार और सम्माननीय पुरुष ही रहेगा अतः उसका चुनाव सीमित तथा परोक्ष रूप में ही होना चाहिये। इस संबंध में आज की पद्धति में कोई विशेष दोष प्रतीत नहीं होता।

———

उपसंहार

राजस्थान में चौथे ग्राम-चुनाव के संबंध में नगरों और गावों में सभी जगह बहुत व्यापक दिलचस्पी रही और मतदान पहले की तुलना में अधिक परिमाण में हुआ। यह चुनाव प्रायः सभी स्थानों पर अत्यन्त शांतिपूर्वक हुआ, अपवाद स्वरूप ही कहीं कहीं कुछ घटनाएं हुईं। । चाहे पांच साल में एक बार ही सही—पर जनता के मत का कुछ मूल्य है और हमारे देश में लोकतंत्र कायम है, यह भान जनता को हुआ। इस ग्राम चुनाव को जनता में लोकतंत्र के भान का स्वरूप माना जाना चाहिये।

जनता में बहुत से स्थानों पर, खासकर शहरों और कस्बों में यह सामान्य भावना पाई गई कि राजस्थान में सत्तारूढ दल का शासन काफी लम्बे समय तक चला है, अब इसमें परिवर्तन आना चाहिये। यद्यपि यह भावना सारे राजस्थान में समान रूप से व्यापक थी, यह कहना सही नहीं होगा।

जनता ने समझ बूझ के साथ किसी दल विशेष की विचारधारा और उपयोगिता की छानबीन कर मतदान नहीं किया, परन्तु अधिकांश मतदान किसी न किसी प्रकार के प्रभाव और दबाव के कारण हुआ, ऐसा प्रतीत होता हैं।

अबकी बार कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य राजनैतिक दल विरोध की दृष्टि से अधिक संगठित थे, उन्हें संभवतः संपत्तिशाली वर्ग का पहिले से कहीं अधिक आर्थिक सहयोग मिला। उन्होंने मिल जुल कर अपना सम्मिलित नियोजन किया, चुनाव समझौते किये। यद्यपि संयुक्त दल का निर्माण तो बाद में हुआ, पर संयुक्त विरोधी मोर्चा खासकर स्वतंत्र-जनसंघ-जनता पार्टी का बना, जिससे सत्तारूढ दल के प्रति विरोधी-भावना को अधिक सक्षम और संगठित बनाया जा सका। इसी के परिणाम स्वरूप कांग्रेस को न तो कुल मतों का और न कुल स्थानों का ही बहुमत प्राप्त हो सका।

यह भी स्पष्ट प्रतीत हुआ कि जनता का ध्यान लोकतंत्र और मत के महत्त्व पर अगर केवल ग्राम चुनाव के दिनों में ही जाता है तो जनता का लोकतांत्रिक शासन-संगठन पर कोई प्रभाव नहीं बनने वाला है, साथ ही लोक-तंत्र के वैचारिक और कार्य-कारी रूप को अच्छी तरह समझने, उस पर व्यक्ति, दल और परिस्थिति का जो प्रभाव पड़ता है उसे पहिचानने और लोक-शक्ति

को वास्तव में कारगर बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि आम जनता के बीच-मतदाताओं में ऐसा संगठन तथा ऐसी संगठन-शक्ति खड़ी हो जो लगातार आम जनता के बीच काम करती रहे, लोकतंत्र को हानि पहुंचाने वाली शक्तियों तथा परिस्थितियों से उन्हें परिचित कराती रहे, उनसे बचने तथा लोक-तंत्र को सबल बनाने वाली शक्तियों तथा प्रवृत्तियों को सबल बनाती रहे। जन-शिक्षण, जन-चेतना तथा जन विवेचन का कार्यक्रम केवल आम चुनाव के दो-चार-छः महीने पहिले से ही न चले, बल्कि लगातार चलता रहे—यह आवश्यक लगता है। इस संबंध में अधिक गहराई और व्यापकता से सोचने और काम करने की जरूरत है।